सत्य

वार्षिक पत्रिका • अंक : 44

सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य)

2025-26

MEMBERS OF THE EDITORIAL TEAM

Left to Right

Back Row : Ms. Tarika, Saksham Shrivastava, Mr. Abhitabh Sheodarshi, Dr. Anand Mishra, Dr. Vijay Lal Meena, Dr. Shiv Shankar Tiwary

Front Row : Sonal Tiwari, Payal Bishnoi, Dr. Nilza Angmo, Dr. Medha Kumari, Dr. Balbhadra Birua, Dr. Naresh Kumar (Hindi)

Also part of the team : Vansh Garg (Executive)

Cover Art by : Sajal Kumari Yadav, B.A. (P), 2nd Year

संदेश

आदरणीय शिक्षकों, प्रिय विद्यार्थियों एवं महाविद्यालय परिवार के सभी सदस्यों,

महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'सत्य' के प्रकाशन के इस विशेष अवसर पर आप सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ। यह पत्रिका हमारे संस्थान की शैक्षणिक उत्कृष्टता, सांस्कृतिक समृद्धि और सृजनात्मक ऊर्जा का सशक्त प्रतिबिंब है। यह केवल शब्दों का संकलन नहीं, बल्कि हमारे सम्मानित शिक्षकों और विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास, उनके विचारों, अनुभवों और नवाचारों का जीवंत मंच है।

हमारा महाविद्यालय सदैव इस बात के लिए प्रतिबद्ध रहा है कि विद्यार्थियों को केवल पाठ्य ज्ञान ही नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों, नेतृत्व क्षमता, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं रचनात्मकता से भी समृद्ध किया जाए। इस संदर्भ में 'सत्य' पत्रिका शिक्षकों सहित विद्यार्थियों को अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने तथा विविध शैक्षणिक अंत:क्रियाओं के माध्यम से नए दृष्टिकोण विकसित करने का अवसर प्रदान करती है।

आज के युग में नारी शक्ति का सशक्तिकरण अत्यंत आवश्यक है। हमें गर्व है कि हमारे संस्थान में छात्राएँ शिक्षा, शोध, खेल, कला और नेतृत्व के प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर रही हैं। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार द्वारा चलाए जा रहे महिला सशक्तिकरण के प्रयास अत्यंत सराहनीय हैं। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हम एक समावेशी और समानतापूर्ण वातावरण का निर्माण करें, जहाँ प्रत्येक विद्यार्थी—चाहे वह किसी भी पृष्ठभूमि से हो—अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास कर सके।

नवाचार और रचनात्मकता आज की शिक्षा का आधार हैं। हमारे विद्यार्थी जिस प्रकार नए विचारों और प्रयोगों के माध्यम से अपनी पहचान बना रहे हैं, वह अत्यंत प्रेरणादायक है। यह पत्रिका उनके इसी नवाचारपूर्ण दृष्टिकोण को सामने लाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

मैं पत्रिका समिति की संयोजिका सहित ऊर्जावान समस्त टीम, संपादक मंडल, लेखकों, विद्यार्थियों और सभी सहयोगियों को उनके अथक परिश्रम के लिए हृदय से बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका सभी पाठकों को प्रेरित करेगी और उन्हें अपने जीवन में उत्कृष्टता प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित करेगी।

आप सभी के उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामनाओं सहित,

सादर,
प्रोफेसर हरि मोहन शर्मा
(प्राचार्य)

संपादक की कलम से...

It is with a sense of profound responsibility that I present to you the latest edition of *Satya*, the official magazine of Satyawati College (E). This magazine is not merely a collection of pages; it is the reflection of our collective intellect and the proving ground for our creative poise. Beyond the constraints of the syllabus and the transient nature of examination scores, *Satya* represents a vital component of the transformative experience that our college provides. The act of putting pen to paper is a transition from the nebulous realm of thought to the concrete world of words, a process that requires a delicate balance of boldness and restraint. It is here, within these pages, that we exercise intellectual responsibility and cultivate the confidence to present our internal views to a public audience. We strive for more than just being heard; we strive to be understood, refining the art of communication into a method for creating genuine connection. The pursuit of knowledge demands humility, a recognition that our individual voices are parts of a much larger orchestra, creating community-led, national harmony.

As in all matters of faith and intellect, one turns to the *Bhagavad Gita* (4.33):

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप। सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥ 33॥

In this *shloka* Krishna tells Arjuna that while material sacrifices have their place, the sacrifice performed with knowledge is superior. Actions, even the most mundane, are elevated to the level of the significant when they are performed with clear comprehension and a deliberate sense of purpose. While some may view a college magazine as a mundane platform, our conscious effort transforms it into a vital piece of our knowledge infrastructure. The power of the written word carries with it the gravity of accountability. To express oneself is to take ownership of the magnitude of one's ideas, ensuring they are rooted in truth and tempered with empathy. I invite you to engage deeply with these pages, to critique, to reflect, and to find the inspiration to contribute your own voice to our next chapter. Let us remember that our words are the mirrors of our character and the milestones marking our progress.

I have learnt patience, hard work and dedication from all the members of the committee, faculty members and students, as well as the non-teaching staff members, who have worked tirelessly and courteously to make this edition possible.

Tarika,
Editor,
Satya

MEMBERS OF THE TEAM

Patron	:	**Prof. Hari Mohan Sharma**
Convener/Editor	:	Ms. Tarika
Co-convener	:	Dr. Medha
Teachers	:	Dr. Nilza Angmo, Dr. Shiv Shankar Tiwary, Mr. Uttam Kumar, Dr. Sapna Chaurasiya, Dr. Balbhadra Birua, Dr. Naresh Kumar, Dr. Vijay Lal Meena, Dr. Anand Mishra.

Student Members

Student Editor (English)	:	Abhitabh Sheodarshi
Student Editor (Hindi)	:	Payal Bishnoi
Assistant Student Editor (English)	:	Saksham Shrivastava
Assistant Student Editor (Hindi)	:	Sonal Tiwari
Executive	:	Vansh Garg

अनुक्रमणिका

यायावरी गाँव से ग्लोब तक 7
कला पुरुष / योग से ही होगा 8
भीतर ही भीतर सैलाब सा बनता रहा / मैं देख रही हूँ 9
चाह है, एक कहानी का पात्र बनूँ 10
दिल और दिमाग के बीच एक संवाद 10
खामोश साया : मेरी माँ 11
खुली किताबों का अनदेखा ख्वाब हो तुम... 11
अलविदा के उस पार 11
मैं इश्क लिखूँ तुम बनारस समझना 12
हृदय प्रदेश : मेरा मध्य प्रदेश 12
त्रिदेव-शक्ति : प्रेम का पूर्ण स्वरूप 12
अब मुझ तक लौट कर आई! 13
तस्वीरें नहीं, एहसास कैद करता हूँ / अग्नि के पार 13
महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइंस्टीन : मानवीय संबंधों का अवलोकन 14
ज्योतिष के तीन प्रमुख योग 16
आज सुबह की अनुपम बेला में 18
संतुष्टि का वरदान 19
मेरी कहानी का अधूरा पन्ना 20
हिन्दी : कल, आज और कल 22
ये देश / पहाड़ 24
घाट-घाट का पानी पीते चलूं 25
सागर की एक बूँद हूँ, पर गहरा हूँ 25

ENGLISH SECTION 26

हँसी / Laughter 27
रिश्ता / Sisterhood 28
Door / The Kitchen 29
Languages / What's In A Name 30
Ms. S. Bose Has Retired To Her Heavenly Abode 30
A Sincere Request 31
Hands That Never Left / The Wind And The Rose 32
From Dust to Glory: Stories of the Human Soul 33
India: A Symphony of Oneness 34
Paper Flower 35
What Seeing Back Feels Like... Never Miss An Opportunity! 36
First Steps at Satyawati: A Freshman's Ode 37
Is AI Making Gen Z Emotionally Lazy — Or More Self-Aware? 38
An Analysis of Improved Gender Ratio in India 40
The Fading Art of Humanities 43
A Journey of Growth, Grit, and Self-Discovery 44
The Silent Killer Of Our Ambition–Procrastination 46
Farewell 46
What Would We Be, If Not Alive? / As I walk it 47
कुलगीत-दिल्ली विश्वविद्यालय 48
Students Artwork / Alumni Artwork 49
राष्ट्रगीत / राष्ट्रगान 50

यायावरी गाँव से ग्लोब तक

प्रो. राजीव कुमार वर्मा, प्रोफेसर, इतिहास विभाग

यायावरी गाँव से ग्लोब तक
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान
यूरोप से अमेरिका तक
दक्षिण पूर्व एशिया से दुबई तक

मैथिली, हिन्दी, अंग्रेजी
अलग-अलग भाषा संस्कृति के संग
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान
हर जगह हमको मिला है
विविध रंग और प्रेम की बारिश।

सहरसा के डुमरा गाँव के कोसी बाँध में
भैरव-भैरवी के पूजा घर में
महादेव स्थान, ब्रह्म स्थान में
खेत-खलिहान और मछली-मखान
से भरी हुई पोखर-नदी में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
पेरिस के चैंप्स-एलिसीस और
एफिल टावर में
लंदन के टेम्स नदी के किनारे
न्यू कैसल में बहन-बहनोई के
फार्म हाउस में
स्कॉटलैंड के एडिनबर्ग, स्टरलिंग कैसल
और राष्ट्रीय संग्रहालय में
वेटिकन सिटी में
जर्मनी के फ्रैंकफर्ट संसद और
राइन फॉल में
इटली के रोम, वेनिस और फ्लोरेंस के
पुनर्जागरण कालीन कलाकृति में
मिलान के ड्यूमो डी मिलानो कैथेड्रल में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
नीदरलैंड्स के खूबसूरत नहर,
पवनचक्की और ट्यूलिप्स के खेत में

बेल्जियम ब्रसेल्स के ग्रैंड पैलेस में
स्विट्जरलैंड के ज्यूरिख, ल्यूसर्न,
इंटरलाकन और जंगफ्राउ में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।

न्यूयॉर्क के टाइम्स स्क्वायर
वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और स्टैच्यू ऑफ़ लिबर्टी में
अमरीका और कनाडा के मध्य
नियाग्रा फॉल्स में
संगीत के शहर नैशविल में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
कोलोराडो के रॉकी माउंटेन,
गार्डन ऑफ़ द गॉड्स और
ग्रेट सैंड ड्यून्स में
टेनीसी वैली के स्मोकी माउण्टेन
और गटलिनबर्ग में
शिकागो के वर्ल्ड रिलीजियस संसद में
मियामी के समुद्र तट में
फ्लोरिडा के दक्षिणतम सीमा के
वेस्ट में
न्यू जर्सी के अक्षरधाम मंदिर में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
हार्वर्ड विश्वविद्यालय के
डिविनिटी स्कूल में
वेंडरबिल्ट, येल,
कोलंबिया और प्रिंसटन विश्वविद्यालय में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
सिंगापुर के गार्डन सिटी और
मर्लियन पार्क में
लिटल इंडिया के
सिद्ध पीठ लक्ष्मी नारायण मंदिर में
कुआलालंपुर के पेट्रोनास टावर में
कंबोडिया के अंगकोर वाट और अंगकोर
थौम में
जावा इंडोनेशिया के बोरोबूदुर स्तूप में
वियतनाम के हो ची मिन्ह और
मेकांग डेल्टा की तैरती दुकान में
दुबई के बुर्ज खलीफा में
मैं गाता हूँ हिन्दी-मैथिली गीत
और भारत-मिथिला का गान।
हिन्दी-मैथिली गीत,
भारतीय-मिथिला संस्कृति और संस्कार
और भारत-मिथिला का गान
जुड़ा है ग्लोबल हृदय से
विश्व पटल पर मिला मुझे
हिन्दी-मैथिली गीत का सुरमयी तान
कवि कोकिल विद्यापति के
जय जय भैरवी असुर भयाउनी
पशुपति भामिनी माया
सहज सुमति वर दियउ गोसाउनि
अनुगति गति तुअ पाया
से विश्व वातावरण सुसज्जित
और प्रकाशित
मिथिला की सीता और
आयोध्या के राम
से रचित और सिंचित मेरा मन-प्राण।
और यायावर बन
मैं ग्राम से ग्लोब घूम रहा हूँ
इस इच्छा और संकल्प के संग
गाँव से ग्लोब तक है एक रंग।

कला पुरुष

उत्तम कुमार, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग

एक किशोर
जो लड़ा अपनी नियति से
भिड़ा यमराज से
दो-दो हाथ किया ईश्वर से
और यह क्रम चलता रहा
अनवरत...
और इस तरह दुर्दुष संघर्षों से
टकराता निर्मित हुआ एक युवक
सूरज करता था जिससे
आंखमिचौली
कलाओं पर जिसके रीझती थी
चांदनी
और रूठता था चांद...
भरमाता हुआ निहारता था चंद्रमा
आखिर यह कौन आया
मानवों में मानवेतर...
बांध रहा जो कला में
जगत की संपूर्णता को...

देवों ने कहा यह होगा
इस युग का 'कला पुरुष'!
शिव ने कहा...
यह होगा नटराज
अधरों पर थिरकता इसके नृत्य
ब्रह्मा ने कहा...
होगा यह रचयिता
प्रकृति का,स्वाभाविकता का
कहा विष्णु ने होगा यह...
प्रेम का चिरंतन गायक
वाग्देवी ने कहा...
कवि होगा यह
रस-सिक्त करेगा
बंजर होती धरा को
प्रतिस्पर्धा में सप्तऋषियों ने भी
कहा...
यह ज्ञान के चरमबिंदु पर होगा
आसीन!

देवों की कथनी देव जाने
यह रही देवों की बात!

मानवों को तनिक भी
ना आयी रास...
'कला पुरुष' की महिमा!
मनुवंशियों ने रचा दुश्चक्र...
ईर्ष्यालु मानव नहीं देख पाए
मानवीयता के समुच्चय को।
उसने खंडित की उसकी
कोमलता को
स्वाभाविकता को
सृजनशीलता को
भावुकता को
ममता को
रस को
और किया अट्टहास
कहा यह तो था अतिसाधारण
कुछ भी तो न था विशेष।
देवों की धारणा थी एक मिथक!
कहा देव क्या जानें
इस लोक का चलन।

देवों के साथ मिलकर...
शिव ने देखा
एक मरता नटराज
ब्रम्हा ने देखा
कुम्हलाती प्रकृति
देखा विष्णु ने
एक मरता प्रेम
वाग्देवी साक्षी रहीं
एक कवि के मृत देह की
देखा सप्तर्षियों ने भी
ज्ञान की चिता को

पर कोई न कर पाया कुछ भी
देवता रह गए अकर्मण्य
यही होनी थी इस युग की
यही नियति थी...
'कला पुरुष' की!
वह आया इस युग में
चमका
कौंधा
मुस्काया मानवता को
और मनुवंशियों के हाथों
अंततोगत्वा मिट गया
सदा के लिए!

योग से ही होगा

डॉ प्रियंका, सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग

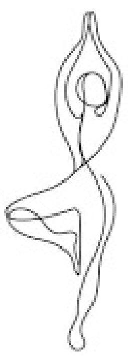

योग से ही होगा
भागती दुनिया, थका हुआ मन,
जब खुद से मिलना चाहेगा,
ख़ामोशी में जो उत्तर है,
वो योग से ही होगा।
टूटी श्वासें, बिखरे सपने,
जब फिर से जुड़ना चाहेंगे,
तन-मन-आत्मा का संतुलन
योग से ही होगा।
ना दवा, ना डर की आदत,
ना भाग्य को कोसना होगा,
स्वस्थ जीवन, स्पष्ट सोच का
निर्माण योग से ही होगा।
हर सुबह नई उम्मीद बने,
हर शाम सुकून सा होगा,
बेहतर इंसान बनने का
हर प्रयास योग से ही होगा।

सोनल तिवारी, बी ए (प्रोग्राम), चतुर्थ वर्ष

भीतर ही भीतर सैलाब सा बनता रहा

भीतर ही भीतर सैलाब सा बनता रहा
बाहर जैसे सब कुछ बिखरता रहा
मैं संवारने का सोचती रह गयी
पर नज़रों से सब कुछ उतरता रहा
सफ़र में निकल तो गयी मंज़िल ढूंढने
जाना पहचाना रस्ता भी
अनजाना सा लगता रहा
सोचा था यादों में ही थाम लूंगी लम्हें को
पर वो लम्हा भी गुज़रता सा रहा
मन की बातों को दिल में उतारने की सोची
पर वो कागज़ पर स्याह की तरह पसरती रही
मुझे रेत सी ज़मीन पर कुछ बूंदों की तलाश थी
पर वो सागर में ही बरसती रही
मैं पेड़ की वो पत्ती जो पतझड़ से नहीं
थकान से गिरती रही
बहते पानी का वो हिस्सा
जिसे ठहरना तो था पर प्रवाह मे बहता रहा
मैंने कोशिशें तो की थी समेटने की शायद
पर वो बेअसर सा होता रहा
शायद उसको बिखरना था, वो बिखरता रहा॥

मैं देख रही हूँ

मैंने देखा है उन हाथों को काँपते हुए
जो सबकी ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाते थे।
मैंने देखी है उन चमकदार आँखों में, वो पीली सी उदासी
जो हमारी एक आवाज़ सुनते ही
अपनी सभी विवशता को भूल, मोती से चमक जाते थे।
मैंने देखा है उन चौड़े कंधों को झुकते हुए
जो कभी हमें खुद से ऊंचा उठाते थे।
मैंने सुनी है आवाज़ में वो हकलाहट और वो बेबसी
जो कभी घंटों लगातार किस्से और कहानियाँ सुनाते थे।
मैंने देखी है उस तन की रंगत को झुलसते हुए
जो कभी कंचन समान दमकते थे।
मैंने देखा है उन सफ़ेद उदास बालों को
जो कभी अपनी पहचान लिए हवा में आज़ाद लहराते थे।
मैं देख रही हू उस इंसान को चुप होते हुए
जो कभी झुंझलाहट में डांट दिया करते थे।
मैं देख रही हू वो फीकी सी मुस्कान
जो कभी ठहाके लगाया करते थे।
मैं देख रही हूँ उनका वो निर्विकार चेहरा
जिनपे कभी अनगिनत भाव आया करते थे
मैं देख रही हूँ वक़्त के साथ क्षमताओं का क्षीण होना
मैं देख रही हूँ वक़्त के साथ विवशता की जीत होना
मैं देख रही हूँ उन चक्षुओं में उस स्नेह का अभी भी जीवित होना
मैं देख रही हूँ....
मैं देख रही हूँ... उस इंसान का बूढ़ा होना।

सोनल तिवारी, बी ए (प्रोग्राम), चतुर्थ वर्ष

चाह है, एक कहानी का पात्र बनूँ

चाह है, एक कहानी का पात्र बनूँ
मुख्य ना सही, नाममात्र बनूँ।
किरदार अपने किस्से सुनाएंगे
वो किस्से सुनने वाला इंसान बनूँ।
बातों-बातों में एक बात बनूँ
लेखक की कलम से निकला एहसास बनूँ।
ज़िक्र हो मेरा भी उन पन्नों पर
एक ऐसा खास किरदार बनूँ।
होती है जो कहानियों में, मूसलाधार,
सुन्दर सी वो बरसात बनूँ।
मिट्टी पर पड़े जब छीन्टें उनकी
सौंधी सी खुशबुओं की वो सौगात बनूँ।
हवाओं में उड़ता पैगाम बनूँ
गर्मियों की मीठी सी छाँव बनूँ।
आये जब सर्द हवाओं का झोंका
जुल्फ़ों का उड़ता जंजाल बनूँ।
पन्नों पर फैला शब्दजाल बनूँ
किस्सा एक यादगार बनूँ।
पढ़े जब कहानी कोई तो
सुनहरे रंगों से रेखांकित वो शब्दांश बनूँ।
चाह है, एक कहानी का पात्र बनूँ।
मुख्या ना सही, नाममात्र बनूँ॥

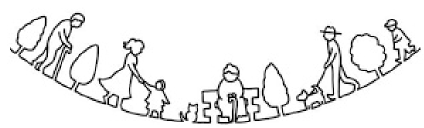

दिल और दिमाग के बीच एक संवाद

दिमाग
तुम समझती नहीं हो बातों को
आ जाती हो जज़्बातों में
सोचती नहीं हो परिणाम क्या होगा
बस बह जाती हो शब्दों के बहकावों में।
दिल
सोचना-समझना काम तुम्हारा
तुमने ना मनोभावों को पहचाना हैं
उलझें रहे परिणामों में ही
क्या तुमने मेरे जज़्बातों को जाना है?
दिमाग
जज़्बातों में लिए फैसले
अक्सर गलत हो जाया करते हैं
कब समझोगी तुम इन बातों को
यू बहकावों में नहीं आया करते हैं
दिल
इतनी व्यावहारिक सोच तुम्हारी
क्या बस यथार्थ में ही जीते हो?
कल्पना के संसार से परे
क्या बस यथार्थरस ही पीते हो?

दिमाग
भ्रम में रहने की आदत तुम्हें
सत्य को कब अपनाया तुमने
अपने जज़्बातों का भुगता परिणाम
सिर्फ अश्क़ ही बहाया तुमने।

दिल
समझते हो तुम नादान मुझको
हर गलती का कसूरवार तुमने मुझको
ठहराया है
कहते हो ख़ुद को समझदार तुम
क्या तुम मेरे हालातों को कभी समझ पाए
हो?

दिमाग
समझता नहीं कसूरवार तुमको
बस हकीकत से परिचित कराता हूँ
लोग कहते हैं मैंने काम करना बंद कर दिया
पर मैं उनके लिए सोचने में वक़्त लगाता हूं।

दिल
वक़्त का क्या है
वो तो फिसल जाता है यूँ ही
तुम जीने मे वक़्त लगाया करो
क्योंकि गुज़रा हुआ वक़्त फिर आता नहीं।

दिमाग
फिर वही बात,
तुम समझती नहीं हो बातों को
सिर्फ बातें बनाती हो।
कभी सोचा है, मुझे कैसा लगता है?
दुख होता है मुझे
जब लोग तुम्हें गलत ठहराते हैं
और तुम आँसू बहाती हो।

दिल
चलो छोड़ो इन बातों को
ये तो रोज़ का हो गया है
आओ साथ में चाय पीते हैं
क्योंकि सुकून से बैठे बहुत वक़्त बीत गया है॥

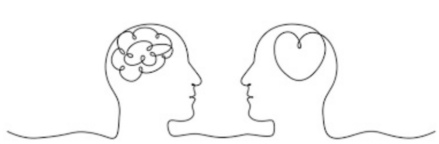

पी. वेंकट लक्ष्मी, बी.कॉम (ऑनर्स), तृतीय वर्ष

खामोश साया : मेरी माँ

सुबह की पहली दस्तक है वह,
चाय की मीठी महक जैसी,
थककर जो कभी न बैठती,
उस अनकही चहक जैसी।
वह घर का वो कोना है,
जहाँ सुकून ठहर जाता है,
उसके हाथ की छुअन से ही,
हर दर्द बिखर जाता है।

वह जताती नहीं कि थकी है कितनी,
बस मुस्कुरा देती है,
हमारी उलझनों को वह,
चुटकियों में सुलझा देती है।
जब दुनिया शोर करती है,
वह खामोशी से सुनती है,
हमारी छोटी खुशियों से,
वह बड़े सपने बुनती है।

वह खुदा का नूर नहीं,
वह तो बस एक एहसास है,
जो दूर होकर भी हमेशा,
दिल के सबसे पास है।
प्रेस किए हुए कपड़ों में,
या टिफिन के उस स्वाद में,
वह ढाल बनी खड़ी रहती है,
हर मुश्किल, हर विवाद में।

कोई मेडल नहीं माँगती,
न कोई बड़ा सम्मान चाहती है,
बस हम खुश रहें हमेशा,
यही प्रार्थना वो बन जाती है
वह माँ है, जो चुप रहकर भी
सब कुछ कह जाती है,
अपनी थकी हुई आँखों में,
बस हमारी दुनिया सजाती है।

खुली किताबों का अनदेखा ख्वाब हो तुम...

अनदेखा अनकहा राज़ हो तुम
चाँद की रोशनी से चमका हुआ अल्फ़ाज़ हो तुम
शहद से प्यारी मीठी आवाज़ हो तुम
तुम खुशबू, मैं प्यार का गुलाब हूं
खिला हुआ राज़ हो तुम

बातें कुछ कह दूँ बीती हुई रात हो तुम
तारीफ़ में क्या कहूँ तारीफ़ की राज़ हो तुम
दिल चाहत की... कही हुई लफ्ज़ का राज़ हो तुम
मेरी मुस्कुराहट का एक राज़ हो तुम!
मेरी मुस्कुराहट का एक राज़ हो तुम!

अलविदा के उस पार

सौहार्द रत्तन, बी.ए. (ऑनर्स) अंग्रेज़ी, प्रथम वर्ष

चाँद से भी ज़्यादा ख़ूबसूरत वो एक रिश्ता था,
ख़ुदा का भेजा हुआ वो एक फ़रिश्ता था।
क़ायनात का हर बेशकीमती हीरा भी,
उसके सामने बेहद सस्ता था
फ़ासलों के बावजूद भी ये प्यार कभी कम न हुआ,
कौन कहता है कि तुम्हारे जाने का मुझे ग़म न हुआ।

आखिरी मुलाकात नहीं हुई और कोई बात नहीं हुई
जिंदगी बीत रही है फिर भी, ये तो कोई बात ना हुई
तुमसे कैसे बताएं कि तुम कितना याद आते हो
याद आ आ कर बहुत उदास, बेक़रार कर जाते हो

तुम्हारे साथ बीते लम्हें हमेशा मुझे याद रहेंगे
तुम्हारी ख़ुशी की ख़ुदा से हम फरियाद करेंगे।
वो शामें जब हमारी मुलाक़ातें हुआ करती थीं
मेरी यादों में तुम्हारी रातें हुआ करती थीं
दिल में दफ़न हो गए हैं वो पल जिनमें,
हमारी आपस में देर तक बात होती थी।

जब ज़िंदा था तो मेरा सहारा थी तुम,
अब मौत के बाद आसमान का सितारा हो तुम।
जाते वक़्त तुम्हारे दिल में मेरी मोहब्बत थी,
आख़िर ख़ुदा को भी तो तुम्हारी ज़रूरत थी।

पता भी नहीं था ये दिन इतना क़रीब है,
चलते-फिरते जाना तुम्हारी हमेशा से चाहत थी।
जो दिन तुम्हें हमेशा के लिए सुकून दे गया,
तुम्हें मुझसे चौदह जून ले गया।

मेरे निकाह पर नाचना तुम्हारी आख़िरी ख़्वाहिश थी,
तुम्हारी साँसें कभी न रुकें, यह ख़ुदा से मेरी फ़रमाइश थी।
तुम्हारी याद में न जाने क्यूँ फ़ना हो गया हूँ मैं,
कहता है ये जग सारा, सितारों के जहान में मिलेंगे अब दोबारा।

दो दिलों को जुदा मौत भी न कर सके, यह मन्नत थी तुम्हारी,
अब तो एक दिन हमारी मुलाक़ात होगी जन्नत में मेरी दादी।

श्रेयांश सिंह, बी. कॉम (प्रोग्राम), द्वितीय वर्ष

मैं इश्क लिखूँ तुम बनारस समझना

मैं इश्क़ लिखूँ, तुम बनारस समझना
मैं इश्क़ लिखूँ, तुम अस्सी की वो शाम समझना,
मैं सुकून लिखूँ, तुम गंगा की अविरल धार समझना।
जब मैं इबादत लिखूँ, तुम विश्वनाथ की गलियों की खुशबू बन जाना,
मैं आस्था लिखूँ, तुम दशाश्वमेध की महाआरती की लौ में ढल जाना।
मैं इंतज़ार लिखूँ, तुम मणिकर्णिका पर जलती राख का बैराग समझना,
मैं संगीत लिखूँ, तुम शहनाई की तान और कजरी का राग समझना।
मैं स्वाद लिखूँ, तुम मल्लइयो और बनारसी पान सी मिठास होना,
मैं रंग लिखूँ, तुम घाटों की सीढ़ियों पर बिछा संतरी लिबास होना।
मैं ठहराव लिखूँ, तुम तुलसी घाट की शांति बन जाना,
मैं तलब लिखूँ, तुम कुल्हड़ वाली चाय की वो महक पुरानी बन जाना।
मैं मुकम्मल लिखूँ, तुम बी.एच.यू. की वो शांत राहें समझना,
मैं इश्क़ लिखूँ, तुम ख़ुद को पूरा बनारस समझना।

हृदय प्रदेश : मेरा मध्य प्रदेश

भारत का जो हृदय कहलाता वैभवशाली वह प्रदेश है,
नर्मदा की कल-कल धारा का पावन यहाँ संदेश है।

विंध्य-सतपुड़ा की बाहों में सिमटा सुंदर सा उपवन है,
शौर्य, प्रेम और भक्ति का यह संगम अति पावन है।

उज्जैन की भस्म आरती में महाकाल का वास यहाँ,
ओंकारेश्वर की लहरों में बहता शिव का नाम यहाँ।

खजुराहो के पत्थरों ने कला की अद्‌भुत गाथा गाई,
सांची के पावन स्तूपों ने शांति की राह दिखाई।

ग्वालियर का किला खड़ा है सीना ताने शान से,
ओरछा की गलियाँ बोलें राजा राम के मान से।

भेड़ाघाट के धुआंधार में गिरती श्वेत जलधारा,
मांडू के महलों में गूंजे प्यार का स्वर प्यारा।

पचमढ़ी की वादियों में प्रकृति का श्रृंगार है,
कान्हा, बांधवगढ़ के जंगलों में बाघों की दहाड़ है।

इंदौर के चटोरे स्वाद में 'सराफा' की महक निराली,
भोपाल की बड़ी झील पर सजती शाम मतवाली।

चंदेरी और महेश्वरी साड़ियों का क्या कहना,
हस्तशिल्प और कला यहाँ का सबसे सुंदर गहना।

मावा-बाटी, पोहा-जलेबी सबका मन ललचाते हैं,
यहाँ अतिथि जो भी आए, वो यहीं के होकर जाते हैं।

सरल हृदय हैं लोग यहाँ की बोली में मिठास है,
हर त्यौहार यहाँ पर उत्सव, हर दिन एक विश्वास है।

गर्व से कहता हूँ मैं भी यह गौरव की काया है,
मेरा प्यारा मध्य प्रदेश ईश्वर की अनूठी छाया है।

त्रिदेव-शक्ति : प्रेम का पूर्ण स्वरूप

सच्चा प्रेम वह है, जो शून्य से अनंत तक जाए,
जिसमें शिव सा धैर्य हो, जो युगों तक राह सजाए।
हृदय में 'सती' की याद हो, और 'पार्वती' की तपस्या भारी,
हजारों वर्ष का वो इंतज़ार, है प्रेम की जीत न्यारी।

जहाँ देह मिट जाए पर समर्पण कभी कम न हो,
वही प्रेम अमर है, जिसमें इंतज़ार का कोई अंत न हो।
पर प्रेम पूर्ण तब है, जब उसमें राधा सा त्याग समाए,
जहाँ कान्हा की बाँसुरी, बस विरह के ही गीत सुनाए।

बिना अधिकार के भी जो सर्वस्व अर्पण कर दे,
वही प्रीत सच्ची है, जो हृदय को त्याग से भर दे।
कृष्ण के पास रुक्मिणी सही, पर नाम सदा 'राधे' का आएगा,
त्याग की उस मूरत के आगे, सारा जग शीश झुकाएगा।

मगर इस त्याग और इंतज़ार को, विश्वास की डोरी थामती है,
जैसे राम की सीता, हर अग्नि-परीक्षा को अपना मानती है।
वनवास की काँटों भरी राह भी, जिसे फूलों सी सुहानी लगे,
जहाँ पति का साथ ही, जीवन की सबसे बड़ी निशानी लगे।

जहाँ मर्यादा भी हो और अटूट भरोसे का मान हो,
वही प्रेम जग में पूज्य है, वही प्रेम का संविधान हो।

यही प्रेम की महिमा है—अटूट, पावन और महान,
जिसमें शिव का मौन है, और कृष्ण की मुस्कान।
जहाँ राम का संकल्प है, और सीता का आत्म-सम्मान,
सच्चा प्रेम वही है, जिसमें मिल जाए परमात्मा का ज्ञान।

अब मुझ तक लौट कर आई!

दीक्षा तिवारी, बी.ए. (प्रोग्राम), द्वितीय वर्ष

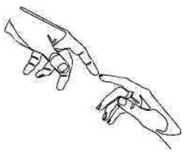

बनाया था बसेरा, थामी थी कलाई
वो मेरी ही परछाई, अब मुझ तक लौट कर आई!
मद्धम जाती हवा से मेरी, जो एक जुल्फ लहरायी
मैं लहरो सी चंचल थी, अब नैया लहरों पर आई
बनाया था बसेरा, थामी थी कलाई
वो मेरी ही परछाई, अब मुझ तक लौट कर आई!
हृदय की वो बात थी, हृदय से बतायी,
फिर कुछ कहा ना अर्धो ने, आँखो ने एक बूँद गिरायी
ठुकराया है दुनिया ने, या मैंने दुनिया ठुकरायी
बनाया था बसेरा, थामी थी कलाई
वो मेरी ही परछाई, अब मुझ तक लौट कर आई!
वो मेरी ही परछाई, अब मुझ तक लौट कर आई!

तस्वीरें नहीं, एहसास कैद करता हूँ

दिव्यांशु शुक्ला, बी.ए. (ऑनर्स) राजनीति विज्ञान, द्वितीय वर्ष

तस्वीरें नहीं, एहसास कैद करता हूँ,
जो दिखता है उससे आगे देखने की कोशिश करता हूँ।
रोशनी और साये के बीच कहानियाँ ढूँढता हूँ,
हाँ मैं हर तस्वीर में एक कहानी तलाशने वाला फोटोग्राफर हूँ।

पाँच फ्रेम काफ़ी नहीं होते पूरे सफ़र को बताने के लिए,
क्योंकि कैमरा रुका है, नज़र अब भी चल रही है।

अग्नि के पार

रीतिका राय, बी.कॉम (प्रोग्राम), द्वितीय वर्ष

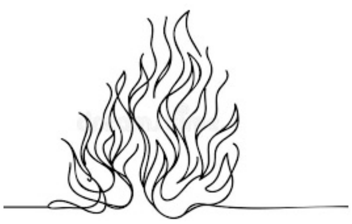

वो तपस्या की अग्नि थी,
ताप ऐसा
कि क्रोध की अग्नि भी
उसके सामने भस्म हो जाए।
उसकी ज्वलनशीलता
तांडव में बदल उठी,
और चीख-चीखकर
संसार का नंगा सत्य उद्घाटित करने लगी।
रूप उसका रौद्र था,
किन्तु भीतर एक सौम्य शांति थी,
जो अपनी अमानत को
धीरे से साथ ले चली।
क्षण भर को लगा मानो
यज्ञसेनी द्रौपदी
सभाजन के अहम, क्रोध और मोह को
पदतल में रौंदती आगे बढ़ रही हो।
यह अग्नि
न हवन की थी,
न किसी यज्ञ संस्कार की,
फिर भी अद्भुत रूप से पवित्र —
मृत्यु के पश्चात उठने वाली वही ताप।
कर्मचक्र से जन्मी वह ज्वाला
आहुति की भूखी थी।
एक-एक कर
विभिन्न आहुतियाँ उसमें समर्पित होती गईं,
और वह तृप्ति की ओर बढ़ती गई।
उसे न घी की चाह थी,
न मेवे की,
उसकी वास्तविक मांग
नेत्रों के आंसू थे —
जो बहते-बहते
एक और रिश्ते को मुक्त कर रहे थे।
अंत में
न कोई पुकार शेष रही,
न कोई शब्द,
बस धुआँ —
जो क्षण भर में आकाश में विलीन हो गया।
जिसकी जो अमानत थी,
वो अपनी वस्तु संग ले गई।
जननी
अत्यंत लाड़ से
अपने पुत्र को
गोद में समेट ले गई।
और जो शेष रहा —
वो भस्म था।
अब टटोलो
अपने रिश्तों को
उसी भस्म की परतों में।
क्या पता
कोई बिछड़ा हुआ रिश्ता फिर दिख जाए,
क्या पता क्रोध का कोई समाधान मिल जाए,
या तुम्हारे कर्ज का
कभी तो हिसाब हो जाए।

महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइंस्टीन : मानवीय संबंधों का अवलोकन

डॉ. राजीव कुमार वर्मा, प्रोफेसर, इतिहास विभाग

पिछले साल अमरीका के प्रिंसटन यूनिवर्सिटी और इंस्टीच्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडीज की यात्रा की तो इतिहास के विद्यार्थी के नाते महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइंस्टीन के मध्य ऐतिहासिक पत्राचार संबंध की याद आई। सोचा अगली बार प्रिंसटन यूनिवर्सिटी और इंस्टीच्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी आयेंगे तो महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइंस्टीन के बारे में अवश्य लिखेंगे। रूस-यूक्रेन युद्ध और हाल के भारत-पाकिस्तान संघर्ष ने गांधी और आइंस्टीन पर लिखने को प्रेरित किया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत बहुविषयकता पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। ऐसे में युगपुरुष महात्मा गांधी और थ्योरी ऑफ़ रिलेटिविटी के प्रवर्तक महान वैज्ञानिक और विचारक अल्बर्ट आइंस्टीन के मध्य संबंधों पर लिखना तो बनता ही है। दिल्ली विश्वविद्यालय के सत्यवती कॉलेज (सांध्य) के प्राचार्य प्रो हरिमोहन शर्मा और दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर संतोष राय ने हमें आइंस्टीन और गांधी पर कुछ लेख भी दिए। गांधी की प्रासंगिकता और उनके व्यक्तित्व से मैं और दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ भीमराव अंबेडकर कॉलेज में कार्यरत मेरी प्रोफेसर पत्नी डॉ जया वर्मा हमेशा आच्छादित रहें हैं। विद्वानों ने गांधी को विविध रूप में चित्रित किया है, जैसे कि गांधी एक नहीं बल्कि कई गांधी हैं: एक प्रासंगिक, एक पतनशील, एक अद्भुत और एक सुलभ गांधी, एक उपनिवेशवादी, राष्ट्रवादी, अंतर्राष्ट्रीयवादी, वैकल्पिक आधुनिकतावादी और उत्तर-आधुनिकतावादी, आदर्शवादी और व्यवहारवादी, नारीवादी और निम्नवर्ग उदारवादी, अहिंसक, सापेक्ष सत्य विश्वासी, आध्यात्मिक गांधी, नैतिक गांधी, शाकाहारी गांधी, संयमी गांधी, आर्काइविस्ट गांधी आदि-आदि। कहने का तात्पर्य है कि राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी, नारीवादी, उदारवादी, आधुनिकतावादी, दलित, शाकाहारी, शांतिप्रिय, सामाजिक कार्यकर्ता और कई अन्य लोगों के अपने-अपने गांधी हैं। दक्षिण अफ्रीका में सत्य और अहिंसा के सफल प्रयोग के बाद गांधी ने भारत में चम्पारण सत्याग्रह, खेड़ा आंदोलन, अहमदाबाद मिल्स हड़ताल, खिलाफत आंदोलन, रौलट एक्ट विरोधी आंदोलन, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन का सफलतापूर्वक संचालन किया।

उनकी अनेक भूलों के बावजूद उनकी दृढ़ता, उनकी सत्य अहिंसा, और इतिहास को परखने की क्षमता, उनकी शानदार सफलता, आम जनता और शिक्षित वर्ग दोनों के लिए प्रिय थी। गांधी ने 1931 में अपनी इंग्लैंड यात्रा के दौरान वहाँ के जनमानस को झकझोर दिया था। गांधी से प्रभावित होकर अल्बर्ट आइंस्टीन ने 1931 में गांधी को चिट्ठी लिखी थी:

आदरणीय श्री गांधी

आपने अपने कार्यों के माध्यम से दिखाया है कि हिंसा के बिना भी सफल होना संभव है, यहाँ तक कि उन लोगों के साथ भी जिन्होंने हिंसा का तरीका नहीं छोड़ा है। हम आशा कर सकते हैं कि आपका उदाहरण आपके देश की सीमाओं से परे फैलेगा, और एक अंतरराष्ट्रीय प्राधिकरण की स्थापना में मदद करेगा, जिसका सभी द्वारा सम्मान किया जाएगा, जो निर्णय लेगा और युद्ध संघर्षों को प्रतिस्थापित करेगा।

ईमानदारी से प्रशंसा के साथ,

आपका
ए. आइंस्टीन।

(मुझे उम्मीद है कि मैं किसी दिन आपसे आमने-सामने मिल पाऊँगा)।

इस पत्र का जबाव गांधी ने 18 अक्टूबर 1931 को निम्नलिखित शब्दों में दिया:

प्रिय मित्र,

यह मेरे लिए बहुत बड़ी सांत्वना है कि मैं जो काम कर रहा हूँ, वह आपकी नज़र में अच्छा है। मैं वास्तव में चाहता हूँ कि हम आमने-सामने मिलें और वह भी भारत में मेरे आश्रम में।

सादर,
एम. के. गांधी

उसके पश्चात 1939 में आइंस्टीन ने लिखा, महात्मा गांधी की जीवन

उपलब्धियां राजनीतिक इतिहास में अद्वितीय हैं। उन्होंने एक उत्पीड़ित देश के मुक्ति संग्राम के लिए एक बिल्कुल नया और मानवीय साधन इजात किया और उसे पूरी ऊर्जा और निष्ठा के साथ लागू किया। पूरी सभ्य दुनिया के सचेत रूप से सोचने वाले इंसानों पर उनका नैतिक प्रभाव शायद हमारे समय में क्रूर हिंसक ताकतों के अतिरंजित मूल्यांकन से कहीं ज़्यादा स्थायी होगा। क्योंकि स्थायी केवल ऐसे राजनेताओं का काम होगा जो अपने उदाहरण और शिक्षाप्रद कार्यों के माध्यम से अपने लोगों की नैतिक शक्ति को जागृत और मजबूत करते हैं। हम सभी खुश और आभारी हो सकते हैं कि भाग्य ने हमें ऐसे प्रबुद्ध समकालीन, आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श व्यक्ति दिया है।

आइंस्टीन ने पुनः लिखा (1944):

अपने लोगों का एक नेता, किसी बाहरी अधिकार द्वारा समर्थित नहीं: एक राजनेता जिसकी सफलता न तो शिल्पकला पर और न ही तकनीकी उपकरणों की महारत पर निर्भर करती है, बल्कि केवल उसके व्यक्तित्व की दृढ़ शक्ति पर निर्भर करती है; एक विजयी योद्धा जिसने हमेशा बल के प्रयोग का तिरस्कार किया है; ज्ञान और विनम्रता का एक व्यक्ति, जो दृढ़ संकल्प और अडिग स्थिरता से लैस है, जिसने अपनी सारी शक्ति अपने लोगों के उत्थान और उनके भाग्य को बेहतर बनाने के लिए समर्पित कर दी है; एक ऐसा व्यक्ति जिसने यूरोप की क्रूरता का सामना एक साधारण इंसान की गरिमा के साथ किया है, और इस तरह हर समय श्रेष्ठ बनकर उभरा है। आनेवाली पीढ़ियाँ, शायद ही कभी इस बात पर विश्वास करेंगी कि इस धरती पर कभी मांस और रक्त से बना ऐसा कोई व्यक्ति चला था।

गांधी की हत्या के बाद 1948 में आइंस्टीन ने गांधी के बारे में निम्नलिखित शब्द कहें:

मानव जाति के बेहतर भविष्य के बारे में चिंतित हर व्यक्ति को गांधी की दुखद मौत से बहुत दुख हुआ होगा। वह अपने ही सिद्धांत, अहिंसा के सिद्धांत का शिकार होकर मर गए। उनकी मृत्यु इसलिए हुई क्योंकि अपने देश में अव्यवस्था और सामान्य अशांति के समय उन्होंने किसी भी व्यक्तिगत सशस्त्र सुरक्षा से इंकार कर दिया। यह उनका अटल विश्वास था कि बल का प्रयोग अपने आप में एक बुराई है, जिसे पूर्ण न्याय के लिए प्रयास करनेवालों को त्यागना चाहिए।

इस विश्वास के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया, और अपने दिल और दिमाग में इस विश्वास के साथ उन्होंने एक महान राष्ट्र को उसकी मुक्ति की ओर अग्रसर किया। उन्होंने दिखाया कि लोगों की निष्ठा केवल राजनीतिक धोखाधड़ी और छल के चालाक खेल से नहीं, बल्कि इसके अहिंसा से जीती जा सकती है। नैतिक रूप से उच्च जीवन शैली का जीवंत उदाहरण।

गांधी को जिस सम्मान से दुनिया भर में देखा जाता है, वह इस मान्यता पर आधारित है, जो कि अधिकांशतः अचेतन है, कि नैतिक पतन के हमारे युग में वे एकमात्र ऐसे राजनेता थे जिन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में मानवीय संबंधों की उस उच्च अवधारणा का प्रतिनिधित्व किया, जिसके लिए हमें अपनी पूरी शक्ति से प्रयास करना चाहिए। हमें यह कठिन सबक सीखना चाहिए कि मानवता का भविष्य तभी सहनीय होगा जब हमारा मार्ग, अन्य सभी मामलों की तरह, विश्व मामलों में भी, न्याय और कानून पर आधारित होगा, न कि नग्न शक्ति के खतरे पर, जैसा कि अब तक होता रहा है।

कुल मिलाकर, मेरा मानना है कि गांधी हमारे समय के सभी राजनीतिक पुरुषों में सबसे प्रबुद्ध विचार रखते थे। हमें उनकी भावना के अनुसार काम करने का प्रयास करना चाहिए। अपने उद्देश्य के लिए लड़ने में हिंसा का उपयोग न करें और किसी भी ऐसी चीज में भाग लेने से बचें जिसे हम बुरा मानते हैं।

एक विद्वान ने आइंस्टीन के बारे में सही कहा है कि आइंस्टीन ने जीवन से ब्रह्मांड के तंत्र पर अपने शोध को आगे बढ़ाने की स्वतंत्रता के अलावा और कुछ नहीं मांगा। उनका स्वभाव दुर्लभ सादगी और ईमानदारी का था; वे हमेशा से ही धन और प्रसिद्धि तथा पुरस्कारों के प्रति उदासीन रहे। साथ ही वे एकांतप्रिय भी नहीं थे, जो अपने आसपास की दुनिया के दुखों और परिस्थितियों से खुद को अलग रखते हों। वे बचपन से ही गरीबी और मनुष्य के प्रति मनुष्य की अमानवीयता के कुछ सबसे बुरे रूपों से परिचित थें। उन्होंने कभी भी कमज़ोरों और उत्पीड़ितों की रक्षा करने में खुद को नहीं रोका। जब उन्हें लगा कि उनकी आवाज़ या प्रभाव किसी गलत को सुधारने में मदद कर सकता है, तो उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। इतिहास में, निश्चित रूप से, इस आत्मनिरीक्षण करने वाले गणितीय प्रतिभा के साथ कुछ समानताएँ हैं, जिन्होंने मानव अधिकारों के हिमायती के रूप में निरंतर काम किया। अतः गांधी और आइंस्टीन का ब्रह्माण्डिक बौद्धिक मिलन आवश्यक था जबकि प्रत्यक्ष रूप से दोनों एक दूसरे से कभी मिल नहीं पाये। इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी, प्रिंसटन, के शेल्बी व्हाइट और लियोन लेवी आर्काइव सेंटर के आर्काइविस्ट कैटलिन रिज्जो का धन्यवाद जिन्होंने अनुरोध करने पर आइंस्टीन से संबंधित अनेक दस्तावेज उपलब्ध करवाये। इस आर्टिकल के भेजे जाने तक अभी भी महात्मा गांधी और अल्बर्ट आइंस्टीन के बीच संबंध पर शोध जारी है।

(इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी एवं प्रिंसटन यूनिवर्सिटी)
न्यू जर्सी, अमरीका
20 जून 2025

ज्योतिष के तीन प्रमुख योग

डॉ. शिव शंकर तिवारी, सहायक प्रोफेसर, बौद्ध अध्ययन विभाग

योगों का ज्योतिष शास्त्र में बहुत अधिक महत्व है और इनके फल भी बहुत प्रभावी होते हैं। ज्योतिष शास्त्र में नवग्रहों से संबंधित कई शुभ-अशुभ योग बनते हैं जिसमें शुभ योग जातक को सर्वदा शुभ फल और अशुभ योग हमेशा ही अशुभ फलदायक, कष्टकारी और बाधाएं उत्पन्न करने वाले होते हैं। अशुभ माने जाने वाले योगों में मंगल से मांगलिक योग, शनि से साढ़ेसाती व ढैय्या एवं राहु-केतु से बनने वाले कालसर्प योग प्रमुख हैं, जिनके कल्पना मात्र एवं बृहद प्रभाव जनमानस को सोचने पर विवश कर देता है। ज्योतिष के तीन ऐसे प्रमुख योग हैं :-

1. मंगल और मांगलिक / मंगलिक योग

विवाह के पूर्व वर-कन्या के जन्म-पत्रियों को मिलाने का आशय केवल परम्परा का निर्वाह नहीं है, किंतु भावी दंपति के स्वभाव, गुण, प्रेम और आचार व्यवहार के संबंध को ज्ञात भी करना है। जब तक समान आचार व्यवहार वाले वर-कन्या नहीं होते तब तक दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं हो सकता। ज्योतिष नक्षत्र, योग, ग्रह, राशि आदि तत्वों के आधार पर व्यक्ति के स्वभाव व गुण को निश्चित करता है कि-अमुक नक्षत्र, राशि एवं ग्रह के प्रभाव से उत्पन्न पुरुष का अमुक नक्षत्र, राशि एवं ग्रह के प्रभाव से उत्पन्न नारी के साथ संबंध करना अनुकूल होगा।

जन्मकालिक लग्न कुंडली में प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम व द्वाद्वश भाव में मंगल का होना पति या पत्नी नाशक बताया गया है। इन स्थानों में पुरुष की कुंडली में मंगल के होने से समंगल और स्त्री की कुंडली में होने से मंगली संज्ञक या कुज (मंगल) दोष होता है। समंगल पुरुष का मंगली स्त्री के साथ इसी प्रकार मंगली स्त्री का समंगल पुरुष के साथ संबंध होना अच्छा होता है। यह दोष भंग न होने पर दाम्पत्य जीवन अनावश्यक समस्याओं और व्यावधान से कष्ट भोगता है और किसी अन्य अशुभ प्रभावों के प्रबल होने पर एक दूसरे के जीवन के लिए अनिष्टकारी भी होता है। अत: वर-वधू दोनों की जन्म कुंडलियों में इस दोष का पाया जाना मांगलिक/मंगलिक का निवारण समझा जाता है अन्यथा एक की जन्म पत्रिका में उपस्थित कुज दोष दूसरे साथी के सुख, स्वास्थ्य और वैवाहिक जीवन के लिए घातक सिद्ध होता है। ऐसी धारणा भारतीय समाज में बनी है जबकि संहिता ग्रंथ, सिद्धांत ग्रन्थ या जातक ग्रंथों में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता है। मुहूर्त ग्रंथों में भी इसका वर्णन नहीं मिलता है। ऋषि पाराशर ने मेष, सिंह, वृश्चिक, धनु, मकर और मीन राशि में मंगल को शुभ माना है तथा केंद्र, त्रिकोणपति होने से कर्क और सिंह लग्न में मंगल को योगकारक और शुभ माना है।

जन्म कुंडली में 1 (प्रथम भाव), 4 (चतुर्थ भाव), 7 (सप्तम भाव), 8 (अष्टम भाव) और 12 (द्वादश भाव) में स्थित मंगल सबसे अधिक दोष कारक, उससे कम शनि और उससे कम अन्य पाप ग्रह माने गए हैं। इस योग को चन्द्रमा, शुक्र और सप्तमेश (सप्तम भाव के स्वामी) से भी देखना चाहिए क्योंकि ये सभी किसी न किसी रूप में वैवाहिक जीवन से अवश्य जुड़े हैं। इनमें किसी भी भाव में मंगल की स्थिति वैवाहिक जीवन की किसी न किसी कड़ी को अवश्य निर्बल करता है जिसके परिणाम-कष्ट, तनाव, कलह, अलगाव व मृत्यु या मृत्यु तुल्य कष्ट होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि पति-पत्नी दोनों के कुज दोष स्वयं एवं जीवन साथी के जीवन को अल्पसुख तथा दोनों की आयु क्षीण करता है। अत: बजाय ऐसे दुर्योगों वाले जातकों का संबंध दीर्घायु योग वाले व्यक्तियों से करना चाहिए अन्यथा बिना कुज दोष वाले व्यक्ति का जीवन वैधव्य यानी विधुरता के कारण कष्टमय हो जाता है।

मांगलिक दोष परिहार:- समाज में सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक, आर्थिक आदि रूप में एक समान स्तर वाले परिवारों तथा लड़के-लड़कियों में ही विवाह संबंध करने की सलाह दी जाती है और ऐसा करने पर ही ऐसे संबंध सफल होते हैं। दोनों में अधिक उच्च-नीच होने से दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं रह पाता है, ठीक इसी तरह की बात मांगलिक दोष होने पर मानी गई है। कई विद्वानों के मतानुसार कुछ स्थितियों में इस दोष का न्यूनाधिक निवारण होना बताया गया है।

2. शनि की साढ़ेसाती और ढैय्या

साढ़ेसाती यानि साढ़े सात वर्ष और ढैय्या अर्थात ढाई वर्ष तक चलने वाली शनिदेव महाराज की दृष्टि को कहते हैं। यह किसके लिए कितना अनिष्टकारी है इसे ज्योतिषीय दृष्टि से विचार करके कहा जा सकता है। ज्योतिषीय दृष्टि से इसे सिर पर चढ़ती, उदर पर स्थित तथा पैरों पर उतरती साढ़ेसाती आदि तीन हिस्सों में बांटा गया है। एक व्यक्ति के जीवन में शनिदेव की साढ़ेसाती प्राय: तीन बार आती है, क्योंकि शनिदेव सम्पूर्ण भचक्र का भ्रमण 30 वर्षों में पूरा करते हैं। प्रथम बार का आगमन तीव्र गति से, द्वितीय बार का आगमन मध्य वेग तथा तृतीय बार का आगमन दीर्घायु व्यक्ति ही देख पाता है क्योंकि यह आगमन

लगभग मृत्यु लेकर ही आता है। शनिदेव की साढ़ेसाती व ढैय्या सभी राशियों को प्रभावित करती है।

साढ़ेसाती और ढैय्या को जनमानस प्राय: अत्याधिक क्षोम एवं चिंता की दृष्टि से देखते हैं। शनिदेव एक पाप ग्रह हैं जो मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, पारिवारिक कष्ट, विपदा और दु:ख अपने साथ लाते हैं। चंद्रमा जो कि मस्तिष्क और मानसिक संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है वह शनिदेव के संपर्क में आने से ग्लानि, खेद, मरण काल, क्लेश, व्यापार में हानि, लक्ष्मी का विनाश, पदच्युति, असफलता, संबंधियों की मृत्यु, अपघात, चोरी, बदनामी, मान-सम्मान-प्रतिष्ठा की हानि एवं दुर्जनों का भय कराता है। यह साढ़े सात वर्ष की सम्पूर्ण अवधि खराब नहीं होती बल्कि ऐसा कहा जाता है कि शनिदेव जितना कष्ट और हानि देते हैं उतना ही लाभ, यश-मान-सम्मान, पद और प्रतिष्ठा भी देते हैं और यह सब जन्म कुंडली में चन्द्रमा और शनिदेव की स्थिति पर निर्भर करता है।

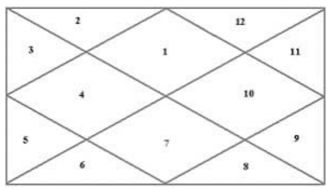

जब जन्म राशि (जन्म कालीन कुंडली में चन्द्रमा जिस राशि में हैं) से बारहवें स्थान में गोचरवश शनिदेव आते हैं तब साढ़ेसाती प्रारम्भ होती है, जिसे चढ़ती साढ़ेसाती कहते हैं और यही साढ़ेसाती का प्रथम चरण होता है और इस समय शनिदेव सिर पर विराजमान होते हैं जिससे व्यक्ति मानसिक तनावग्रस्त व निर्णय शक्ति से क्षीण हो जाता है। इसके ढाई वर्ष बाद शनिदेव 12वें स्थान से निकलकर द्वितीय स्थान (जन्म राशि) पर आते हैं जिसे हृदय पर चढ़ती साढ़ेसाती कहते हैं और यह साढ़ेसाती का दूसरा चरण होता है। इस समय में शनिदेव हृदय को सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं और यह स्थिति तब तक रहती है जब तक शनिदेव द्वितीय स्थान से निकलकर तृतीय स्थान में नहीं आ जाते जो पैरों पर उतरती साढ़ेसाती कहलाती है और यह साढ़ेसाती का तीसरा चरण होता है। इस अवस्था में शनिदेव व्यक्ति (जातक) को एक स्थान पर अधिक समय तक टिकने नहीं देते और व्यक्ति को अत्याधिक यात्राएं करनी पड़ती है और प्राय: यह चरण कष्टप्रद ही होता है।

इस प्रकार शनिदेव तीन राशियों (द्वादश, लग्न और द्वितीय भाव) पर साढ़े सात वर्ष भ्रमण करते हैं। साढ़ेसाती के अलावा भी इनकी एक और दृष्टि और प्रकार है जिसे ढैय्या लघुकल्याणी) कहते हैं। यह तब होता है जब शनिदेव गोचरवश जन्म राशि से चौथी और आठवीं राशि में आते हैं तब ढैय्या लगता है और यह शनिदेव की एक राशि भोग्यानुसार (ढाई वर्ष) समय तक रहती है।

3. राहु-केतु और कालसर्प योग

फलित ज्योतिष में कालसर्प योग का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसे एक अशुभ और दुर्भाग्यशाली योग माना गया है। कालसर्प योग किसी भी जातक की कुंडली के लिए सामान्यत: घातक माना जाता है परंतु यह आवश्यक नहीं है कि सभी कालसर्प योग जातक के लिए नेष्ट हीं हो। यदि राहु अनुकूल है तो जातक को अप्रत्याशित लाभ और प्रगति कराकर उसे साहसी, संघर्षशील और लोकप्रिय बनाता है। बड़ी आश्चर्य की बात है कि प्राचीन ज्योतिष ग्रंथों में इस नाम के योग का वर्णन नहीं मिलता है।

जब जन्म कुंडली में समस्त ग्रह राहु (जो लग्न से आगे) और केतु (पीछे भाग में हो) के मध्य स्थित होने पर कालसर्प योग कहलाता है। इस योग में राहु सर्प का मुख और केतु पूंछ का भाग होता है और सारे ग्रह इनके बीच समाए माने जाते हैं। इस योग में राहु के साथ जिन ग्रहों को युति होती है उसके अंश राहु से कम होते हैं और आमने-सामने राहु-केतु हों और अन्य ग्रह इनके बीच में हो तो ग्रहों की स्थिति को कालसर्प योग कहते हैं।

इस योग के फलस्वरूप जड़ता, आध्यात्मिकता की कमी, आंतरिक हीनता, संघर्षमय तथा निराशावादी जीवन, विकास क्रम अवरुद्ध होना, विवाह में विलम्ब, कलह, प्रगति में रुकावटें, आर्थिक विपन्नता, मनोवांछित सफलता में बाधा, संतान एवं धन सुख प्राप्ति में अवरोध, बाह्य अहंकार तथा जीवन में उतार चढ़ाव आदि होता है और जातक को उतना फल नहीं मिलता जितना की वह परिश्रम करता है। इस योग से जातक भावुक, आराम पसंद, गुप्त क्रियाओं में दिलचस्पी लेनेवाला, जीवन का पूर्वार्ध साधारण, उत्तरोत्तर में भाग्यवान, मध्यायु के बाद निरंतर धनागम, विख्यात लेकिन उसे मानसिक कष्ट तथा समस्याएं निरंतर घेरे रहती है। इस योग में प्राय: यह देखा गया है कि राहु -केतु जिस भाव में होते हैं उसकी बहुत अधिक क्षति एवं हानि होती है। यह योग 12 प्रकार के होते हैं :-

1. अनंत कालसर्प योग (प्रथम भाव में राहु और सप्तम भाव में केतु)
2. कुलिक कालसर्प योग (द्वितीय में राहु और अष्टम में केतु)
3. वासुकी कालसर्प योग (तृतीय में राहु और नवम में केतु)
4. शंखपाल कालसर्प योग (चतुर्थ में राहु और दशम में केतु)
5. पद्म कालसर्प योग (पंचम में राहु और एकादश में केतु)
6. महापद्म कालसर्प योग (षष्ठ में राहु और द्वादश में केतु)
7. तक्षक कालसर्प योग (सप्तम में राहु और प्रथम में केतु)
8. कर्कोटक कालसर्प योग (अष्टम में राहु और द्वितीय में केतु)
9. शंखचूड कालसर्प योग (नवम में राहु और तृतीय में केतु)
10. घातक कालसर्प योग (दशम में राहु और चतुर्थ में केतु)
11. विषधर कालसर्प योग (एकादश में राहु और पंचम में केतु)
12. शेषनाग कालसर्प योग (द्वादश में राहु और षष्ठ में केतु)।

कालसर्प भंग योग-जिस प्रकार से राजयोग के लिए राजभंग योग, नीचस्थ ग्रहों के दुर्योग के लिए नीचभंग राजयोग और अरिष्ट ग्रहों के योग के लिए अरिष्ट भंग योग हैं, उसी तरह हमारे पुराने ज्योतिष आचार्यों ने कालसर्प योग के लिए कालसर्प भंग योग की भी कुछ अवस्थाएं बताई हैं जिससे यह योग भंग होकर राजयोग बनता है।

आज सुबह की अनुपम बेला में

डॉ. मेधा कुमारी, सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

आज सुबह की अनुपम बेला में सुमंगला माता के साथ बहन सत्यवती की पावन स्मृति ने गले लगा लिया है। बुद्ध की समकालीन भिक्षुणी सुमंगला माता ने सदियों की सीमा के पार सभ्यता के बचपन में स्वाधीनता का ये गीत गाया—

अहो! मैं मुक्त नारी हूँ,
कितनी अद्‌भुत है मेरी मुक्ति।
पहले मैं ओखली-मूसल और
टेढ़े-मेढ़े पति के बंधन में थी।
आज उन सब बंधनों से छूटकर
शांत वन में बैठी हूँ—
स्वतंत्र, निस्संग और प्रसन्न,
अपने ही मन की स्वामिनी।

दिल्ली की बहन सत्यवती ने देश की राजनीतिक-मुक्ति के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। कल जैसे ही कॉलेज के प्रांगण में कदम रखा, वैसे ही बहार में खिले फूलों के साथ-साथ बहन सत्यवती की चेतना ने भी स्वागत किया। सालों से रोज उनके नाम का सानिध्य है। सालों से संसार के कार्य-व्यवहार में बात-बात पर सत्यवती महाविद्यालय का जिक्र आता ही रहा। कॉलेज के वार्षिक महोत्सव से लेकर अन्य हर कार्यक्रमों में भी उनको स्मरण करने की रस्म है ही, लेकिन कल जाकर शायद पहली बार उनकी स्वाधीन-चेतना ने हृदय पर दस्तक दी।

ऐसा लगा कि जैसे उनका नाम अब जाकर हृदय में खिला है।

नाम लेने और नाम के हृदय में खिलने का भेद कितना बड़ा है-यह भी इस क्षण में एहसास हो रहा है...

सुमंगला माता की स्वाधीन चेतना जब सत्यवती बहन की स्वाधीन चेतना से जा मिलती है, तो हृदय सुमिरन का अखंड पाठ बन जाता है और उस अखंड पाठ में नाम न केवल कलयुगी समय से एस्केप का एक सुंदर मार्ग बन जाता है बल्कि संसार के मंगल का एक सतत खिलने वाला प्रार्थना-गीत भी...

आहा! संत हरिदास की उस भाव दशा की कल्पना भर से हर रोम पुलकित हो रहा है, कि जब उनकी हर सांस हरि-दर्शन का गीत बन गई। इससे कम की अभीप्सा तो मनुष्य-जीवन के साथ छल ही होगा

कल का दिन शायद ईश्वर के हर रूप में खिलने का दिन था...

तभी तुलसीदास के रामचरितमानस की कक्षा में ये पद आकर हृदय को संत तुलसी के सुवास से भर गया—

निर्मल मन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

तुलसी का ये पद कबीर के इस पद से जा मिला—

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिए कोय।
आप ठगे सुख होत है और ठगे दुख होय॥

दोनों ने एक दूसरे से गलबहियाँ की और उन दोनों के मिलन से मेरे हृदय को यूरेका का क्षण मिला!

अपने ठगे जाने में सुख उपजने तथा औरों के ठगे जाने के दुख का अंतर समझ में आया।

कोई निर्मल मन ही तो दूसरों को ठगने के बजाय ख़ुद के ठगे जाने में आनंद की अनुभूति करेगा। लौकिक को खोकर अलौकिक को पाना, यही तो कबीर और तुलसी समझा रहे हैं कि लौकिक संसार में ठगा जाना अलौकिक संसार के सुख का दरवाज़ा खोल देता है। और जब अलौकिक आनंद का दरवाज़ा खुलता है तो वो अलादीन के ''खुल जा सिम सिम'' का मंत्र बन जाता है, जो लौकिक दुख को भी सुख में रूपांतरित कर देता है।

लेकिन जरा ठहरिए...

कल चेतना के एडवेंचर की कहानी ने यहीं विश्राम नहीं ले लिया।

रीतिमुक्त कवि घनानंद भी कबीर और तुलसी के साथ करीब आकर बैठ गए -

अति सुधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलत आपुनपौं,
झिझक कपट अरु आँक नहीं॥

''प्रेम के पीर के कवि'' घनानंद ने हौले से कानों में कहा तुलसी और कबीर के घर का रास्ता मुझसे होकर गुजरता है...

चेतना के एडवेंचर का भी अपना ही नशा होता है। उसकी अपनी ही मदहोशी होती है...

इस मदहोशी में मीरा ने भीतर आकर अपना स्वरूप धारण कर लिया...

अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी।

जब मीरा जैसी अबला बौरा जाती है तो संसार के लिए उसकी चेतना के आलोक को सह पाना मुश्किल हो जाता है क्योंकि बिना 'निर्मल मन' मीरा की चेतना के ताप को सहने की शक्ति कहाँ से आएगी भला! मीरा को समझने की कुंजी तो निर्मल मन' ही है!

तो आज सुबह कल के दिन के चेतना के एडवेंचर को याद करते हुए सुमंगला माता, स्वतंत्रता-सेनानी सत्यवती बहन, तुलसी और उनके राम, कबीर, मीरा के राधा-माधव, घनानंद और उनकी सुजान, सभी मेरे चारों ओर बैठे हैं:

अभी इस पल में हृदय गा रहा है:

धड़कनों में धड़कता रहे तेरा नाम
इसके सिवा न हो कोई और काम
कण-कण में खिले तेरे रूप का माधुर्य
क्षण-क्षण में मिले तेरे दरस का आनंद
आनन्द आनन्द आनन्द आनन्द आनन्द।

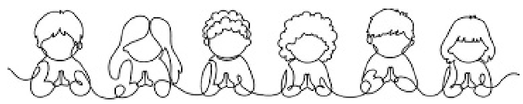

संतुष्टि का वरदान

डॉ. नेहा बंसल, सहायक प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग

कहते हैं जब भगवान ब्रह्माजी ने इस संसार की रचना की, तब उन्होंने प्रत्येक जीव—चाहे वह मनुष्य हो, पशु, पक्षी, वृक्ष, झाड़ी या बेल—को अत्यंत मनोयोग से श्रेष्ठ गुण प्रदान किए। उन्होंने जीवन दिया, स्वास्थ्य दिया, आचार-विचार दिया और साथ ही अच्छा भाग्य भी दिया क्योंकि कोई भी सृजनकर्ता अपनी कृति का बुरा नहीं चाहता। वह हमेशा यही चाहता है कि उसकी रचना सुंदर हो, सफल हो और सुखी हो।

परंतु जीव स्वभाव से अपनी बुद्धि को सर्वोत्तम मानता है। उसे जो मिला है, वह उसे पर्याप्त नहीं लगता। उसे लगता है—''इससे थोड़ा और मिल जाता तो अच्छा होता।''

धीरे-धीरे सभी जीवों में एक अतिरिक्त चाह जन्म लेने लगी।

ब्रह्माजी इस स्थिति से बहुत चिंतित हो गए। उन्होंने सोचा, ''मैंने तो इन्हें सर्वोत्तम दिया है, फिर भी ये असंतुष्ट क्यों हैं?'' अंतत: वे भगवान विष्णु के पास पहुँचे और सारी समस्या उन्हें बता दी।

भगवान विष्णु मुस्कराए और बोले—
''इनकी समस्या मैं समझ गया हूँ। इन्हें मेरे पास भेज दीजिए।''

सभी जीव विष्णु जी के पास पहुँचे और उनसे भी कुछ अतिरिक्त पाने की ज़िद करने लगे।

यह दृश्य कुछ ऐसा था जैसे बचपन में हम दुकानदार से चुंगा माँगते थे—सामान तो लेते ही थे, पर साथ में दो-चार चने या गुड़ के दाने भी चाहिए होते थे।

विष्णु जी उनकी लालसा समझ गए।

वे अपने भंडार में गए और दरी के नीचे छुपी कुछ चीज़ें निकाल लाए—

और सबको थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया।
किसी को मिला—लालच।
किसी को मिला—क्रोध।
किसी को मिला—हिंसा।
किसी को मिला—अहंकार।
किसी को मिला—कटुता, रोग और द्वेष।

सभी बड़े प्रसन्न होकर चले गए—
''चलो, विष्णु जी से कुछ अतिरिक्त तो मिला!''

आज वही ''अतिरिक्त'' हमें चारों ओर दिखाई देता है—
मनुष्यों में, पशुओं में, वृक्षों में, पक्षियों में, जलचर जीवों में।
लालच, क्रोध, अहंकार और हिंसा मिलकर जीवन को धीरे-धीरे नारकीय बना रहे हैं।

सच तो यह है कि ब्रह्माजी ने जो मूल भाग्य दिया था, वही सबसे श्रेष्ठ था। यदि जीव उसी में संतुष्ट रहता, तो न दुख होता, न अशांति, न पतन।

मेरी कहानी का अधूरा पन्ना

तनुषी भाटिया, बी. कॉम (ऑनर्स), द्वितीय वर्ष

यह कहानी है आयरा और तनिष्क की। दोनों हिमाचल के कांगड़ा के बैजनाथ गांव में रहते थे। बैजनाथ गांव प्रसिद्ध था भगवान शिव के मंदिर के लिए। यह गांव इसलिए प्रसिद्ध था क्योंकि रावण ने यहां तपस्या की थी।

आयरा, या इरा, 12 साल की लड़की थी, घर की सबसे लाडली और छोटी। वह पढ़ने लिखने में बहुत अच्छी थी। वह दुनियादारी से बहुत दूर थी। हमेशा अपने ही ख्यालों में खोई रहती थी। उसके घर वालों ने उसे कभी महसूस नहीं होने दिया कि बाहर की दुनिया कितनी क्रूर है। इरा के पिता एक डॉक्टर थे और उसकी मां एक नर्स थी। वे समाज की नजर में छोटी जात के लोग थे। आयरा का एक भाई भी था। सब आयरा को बहुत प्यार करते थे। उसे प्रकृति से बहुत प्यार था। दूसरी ओर तनिष्क था जो की 15 साल का था। वह समाज की नजर में बड़ी जात का लड़का था। उसके पिता एक बड़ी कंपनी में काम करते थे और उसकी मां भी। वह एक ऐसा लड़का था जो प्यार मोहब्बत से दूर था।

पहला पन्ना : आयरा और तनिष्क पहली बार शिवरात्रि के दिन मंदिर में मिले थे। सब बच्चे खेल रहे थे और दोनों उस वक्त एक दूसरे से मिले। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ते थे पर उसी दिन दोनों पहली बार मिले थे। दोनों एक दूसरे से बात करते हैं, आयरा तनिष्क को पूछती है: ''तू तो मेरे ही स्कूल में पढ़ता है ना?'' तनिष्क कहता है, ''हाँ वहीं पढ़ता हूँ। तूने मुझे आज देखा है क्या? हम आज से रोज एक साथ खेलेंगे।'' आयरा कहती है, ''हाँ ठीक है'' अब वह दोनों एक साथ खेलने लगे। जब समय बीतता गया और दोनों बड़े होने लगे तो दोनों ने बात करना धीरे-धीरे बंद कर दिया।

आयरा को तनिष्क से प्यार होने लगा था। आयरा तनिष्क को देखती थी स्कूल में, और स्कूल की बस में। उसे तनिष्क कहीं ना कहीं दिख जाता था, क्योंकि दोनों एक ही गांव के थे। आयरा की आंखें हमेशा तनिष्क को ढूंढती रहती थीं। तनिष्क भी उससे प्यार करता था। पर कभी दिखाता नहीं था। वह एक दूसरे से बात नहीं करते थे। पर उनमें नोक झोंक हो जाती थी कभी-कभी।

दूसरा पन्ना : अब बात है तब की जब आयरा नौंवी कक्षा में थी और तनिष्क बारहवीं कक्षा में था। आयरा को डर था, अगर आज मैं तनिष्क को अपने प्यार का इज़हार नहीं कर पाऊंगी तो कभी नहीं कर पाऊंगी। एक दिन जब आयरा की परीक्षा थी और तनिष्क की कक्षाएं चल रही थी, आयरा बहुत डरी हुई थी और उसकी दोस्त, हर्षिका, जो कि जानती थी आयरा तनिष्क से कितना प्यार करती है पर आयरा में हिम्मत नहीं थी बात करने की, उसके साथ थी। हर्षिका तनिष्क से बात करने चली गयी और कहा कि आयरा तुम्हें बहुत प्यार करती है। तनिष्क ने पूछा कि आयरा कहां थी? वह आयरा के सामने आता है, उसे मुस्कुरा कर देखता है पर वहाँ से चला जाता है। हर्षिका कहती है कि आपका जो भी जवाब हो आप बता देना घर लौटते समय। आप आयरा से बात कर लेना पर उस दिन तनिष्क स्कूल की बस में नहीं जाता है, प्राइवेट बस में चला जाता है। आयरा उदास हो जाती है और घर चली जाती है। घर जाकर वह बहुत रोती है क्योंकि उसे एहसास था कि तनिष्क भी उसे बहुत प्यार करता है। पर वह मायूस हो गई थी कि तनिष्क ने कुछ बोला नहीं।

स्कूल की छुट्टियां पड़ गयीं। ठीक एक महीने बाद तनिष्क का मैसेज आता है, ''आयरा कैसी हो?'' पर आयरा केवल मन में चल रहे अपने सवाल का जवाब जानना चाहती थी। तनिष्क जवाब नहीं देता है और आयरा आगे बात नहीं करती। पाँच महीने बाद तनिष्क फिर से मैसेज करता है, ''क्या मैं बात कर सकता हूं?'' तनिष्क कभी बात करता था और कभी नहीं। आयरा परेशान थी कि ऐसा क्यों है? वह इसी बारे में सोचती रहती थी।

तीसरा पन्ना : कुछ समय बाद, दोनों मिलते हैं। मंदिर में एक दूसरे को देखते हैं। दोनों खुश हो कर बातें करना शुरू करते हैं। रोज बातें करते हैं। एक दूसरे को भविष्य के लिए प्रेरित करते हैं। एक दूसरे को बताते हैं कि जीवन में क्या करना चाहते हैं। बचपन की भी बातें करते हैं। लेकिन तनिष्क अब भी अपने फैसले को लेकर स्पष्ट नहीं था। आयरा जब भी पूछती, तनिष्क अटपटा कर बात को टाल देता था। एक दिन आयरा ने कहा कि, ''मैं तभी बात करूंगी, अगर तुम मुझे साफ-साफ जवाब दोगे। मेरे साथ जिंदगी बिता सकते हो या नहीं?'' तनिष्क मान जाता है।

आयरा की 12वीं कक्षा हो चुकी थी और वह ग्रेजुएशन के लिए महाविद्यालय जाने वाली थी बनारस। तनिष्क चंडीगढ़ जाने वाला था। तनिष्क कहता है, ''तुम चली जाओगी तो मैं ऐसे नहीं रह सकता।'' दोनों मिले थे कैफे में पर तब इतनी बात नहीं हुई। पर अब आयरा ने

बताया कि उसका दाखिला बनारस महाविद्यालय में हो चुका था। तनिष्क खुश हुआ पर साथ-साथ बहुत दुखी भी। उसके दो दिन बाद, आयरा से बात करता है, कि ''मैं अब इस रिश्ते को आगे नहीं बढ़ा पाऊंगा। मेरी मां को पता चल गया है और उन्होंने कहा तनिष्क तू गलत कर रहा है। वह लड़की हमारी जात की नहीं है। छोटी जात की है और वह है भी हमारे गांव की। तूने यह सोच भी कैसे लिया।''

तनिष्क अपनी माँ से बहुत प्रेम करता था और उनकी बात की बहुत कद्र करता था। उसकी माँ नहीं मानती तो तनिष्क इस रिश्ते से मुँह मोड़ लेता है। यहाँ तक कि जब तीन दिन बाद दोनों मिलते हैं तो तनिष्क आयरा की तरफ देखता भी नहीं है। न ही बात करता है। आयरा बहुत उदास हो जाती है क्योंकि वह बनारस जाने वाले थी पाँच दिन बाद। तनिष्क ने बात करना बंद कर दिया था। तनिष्क नजरअंदाज कर रहा था। आयरा बनारस जाने के बाद भी बहुत प्रयास करती है संपर्क करने का परंतु तनिष्क बात नहीं करता।

आखरी पन्ना : कुछ समय बाद जब आयरा घर आती है तो तनिष्क उसे देखता है। वह रुक नहीं पाता और आयरा से बात करता है। आयरा को सब बताता है कि उसने कैसे आयरा के बिना समय बिताया। कहता है कि वह मजबूर था।

वह आयरा को समझता है कि, ''मैं नहीं चाहता था कि अगर कल को हमारी शादी हो जाए तो लोग तुम्हें बुरा-भला कहें। मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूं।''

आयरा बोलती है, ''अगर तुम मुझे प्यार करते हो तो क्या तुम मेरा साथ नहीं दे सकते ?''

तनिष्क कहता है, ''नहीं मैं अपने परिवार के खिलाफ नहीं जा सकता।''

आयरा कहती है, ''तुम मेरे लिए मेरा साथ नहीं दे सकते हो तो कैसा प्यार। मैंने क्या अपने परिवार के बारे में नहीं सोचा था ?''

अब आयरा ने सोच लिया था कि अब कभी भी तनिष्क का चेहरा नहीं देखूंगी। ना ही उसे मिलूंगी।

आयरा बिल्कुल अकेले रहने लगी। उसका विश्वास टूट चुका था। उसे अब अकेले रहना पसंद था। जब भी उसका मन दुखी होता तो वह अपनी डायरी में लिखकर भगवान से बातें करती। इस पर ही एक कविता उसे बहुत पसंद थी जो कि पंजाबी में थी पर उसने पहाड़ी में उसके लिए कुछ अपने शब्दों का प्रयोग करके लिखी थी।

''अगले जन्मे च आया तू मेरा माही बनी के मैं भी मिल गी तीजो तेरी ही जाति च जम्मी के''

''तेरी यादा च बैठी के मैं कुछ बोल लिखे न। तेरी मिठ्ठयां गल्ला दे मुहरे ता चाहा भी फिकियां न। होई सके ता आया फिरी मेरी जिंदगी च प्यार बनी के। अगले जन्मे च आया तू मेरा माही बनी के मैं भी मिलगी तीजो तेरी ही जाति च जम्मी के।''

''ऐ मेरे साह भी लगदे मिज्जो डूबदी किश्ती, मै तेरी बाटा च बैठी ईया होई जो कबरा च कुसी ने दब्बी, पर तू कुछ ना जानया मेरा प्यार, मै तेरे कोल औंगी माही राख बनी के, अगले जन्मे च आया तू मेरा माही बनी के मैं भी मिलगी तीजो यादा बनी के''

''जे रूह कन्धे रूह मिले ता औकात क्या दिखदे, मै पागल सोचदी थी ऐ प्यार जातां दिखदा नी, पर ऐ दुनिया ता नबजा भी फडदी जिस्मा अन्दर बढी बढी के, अगले जन्मे च आया तू मेरा माही बनी के मैं भी मिलगी तीजो तेरी ही जाति च जम्मी के।''

''मेरीयां ता डोला आसा भी मूक्की आइया इन्ना सेई-सेई के, तू ता चली गेया मेरी रूहा जो कालख मली के, इक बारी ता आई जा रब दा एहसान बनी के, अगले जन्मे च आया तू मेरा माही बनी के मैं भी मिलगी तीजो तेरी ही जाति च जम्मी के।''

अंत: और इसी के साथ तनिष्क और आयरा की कहानी खत्म हो गई। आयरा अपनी पढ़ाई कर रही है। वह फिर कभी तनिष्क से नहीं मिली। तनिष्क ने बात करने की कोशिश भी की मगर अब आयरा टूट चुकी थी। वह अकेले खुश है। प्यार पर भरोसा नहीं करती। हां मगर वह कहती है कि तनिष्क ही मेरा प्यार है। और कोई उसकी जगह नहीं ले सकता।

भूतपूर्व छात्र

हिन्दी : कल, आज और कल

सत्यम कुमार झा, बी ए (प्रोग्राम), स्नातक बैच 2024

हिन्दी भारतवर्ष की वह भाषा है, जिसके माध्यम से हमारे प्राय: संतों, सुधारकों, नेताओं और साहित्यकारों ने अपने विचारों और सिद्धान्तों का उन्मुक्त भाव से प्रचार-प्रसार किया है, चाहे वे देश के किसी भी प्रान्त के क्यों न रहे हों। हिन्दी भारत की सांस्कृतिक, राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक, भावात्मक एकता एवं अखण्डता की अभिव्यक्ति की भाषा है। इस हिन्दी का अपना एक इतिहास है, जो लगभग एक हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। इसी हिन्दी को देश की सामासिक संस्कृति की भाषा के रूप में जाना जाता है। अपने मौलिक रूप में यह खड़ी बोली की एक मिश्रित शैली है। इसे हिन्दुस्तानी, हिंदी, हिन्दवी, हिन्दुई, मुसलमानी, हैदराबादी, देहलवी, गुजराती, रेखता, उर्दू, खड़ी बोली, दक्खिनी हिन्दी आदि विविध नामों से पुकारा जाता रहा है। यह किसी एक स्थान या प्रान्त की भाषा नहीं है। पूरे देश के विभिन्न भाषा-भाषी लोगों के आपसी मेलजोल से, भाषा-व्यवहार से, आदान-प्रदान से, संसर्ग-समन्वय से, टकराव से और संवाद से यह भाषा अंकुरित, पल्लवित और विकसित होकर देश की परस्पर सम्पर्क भाषा बन गई है। यह भाषा उर्दू-हिन्दी-मिश्रित शैली की खड़ी बोली अथवा हिन्दुस्तानी है। यह संसार की सर्वाधिक मिश्रित भाषाओं में से एक है।

हिन्दी का विकास बारहवीं शताब्दी से माना गया है, जहाँ अपभ्रंश का प्रचलन था; किन्तु लोकभाषा या देशभाषा हिन्दी साहित्य को वाणीबद्ध करती है। विद्यापति पदावली मैथिली में रचित काव्य है, जो उक्त कथन का प्रमाण है। भक्ति काव्यों के साथ रीतिकाव्य की रचना भी अवधी और ब्रज में होती रही है। खड़ी बोली भी खुसरो की मुकरियों और पहेलियों में अपने अस्तित्व का प्रदर्शन करती है। भाषा योगवशिष्ठ (1741), प्रेमसागर, सुखसागर, नासिकेतोपाख्यान आदि की भाषा भी हिन्दी ही है। इस काल में हिन्दी अरबी-फारसी के विरुद्ध संघर्ष करती है। स्वातंर्त्यकाल में खड़ी बोली का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है। इसलिए डॉ. मैथ्यू को इसे राष्ट्रभाषा घोषित करना पड़ा और वे सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की मान्यता प्रदान करने के आग्रही हो गए थे।

अंग्रेजी राज में सन् 1857 में बंगलाभाषी स्व. केशवचन्द्र सेन ने लिखा था कि यदि हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज ही राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है। हिन्दी ही भारतीय संस्कृति और आस्थाओं की वाहिका है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की तरह हिन्दी भी मध्यदेश की ही नहीं, सम्पूर्ण भारतवर्ष की सम्पर्क-भाषा रही है। तमिल प्रान्त भले ही इस कथन का अपवाद हो सकता है। लगभग चार सौ वर्षों तक हिन्दी अपने मध्यदेश से बाहर तीर्थस्थानों, मन्दिरों, साधु-सन्तों, व्यापारियों और पर्यटकों के बीच प्रचलित रही। सुदूर दक्षिण की जनता प्रयाग, अयोध्या, मथुरा से होती हुई उत्तर में बदरीनाथ, गंगोत्री तक की यात्रा करती हुई सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का ही प्रयोग करती चलती है। इस प्रकार हिन्दी अपने आप में भारत की राष्ट्रभाषा और सम्पर्क भाषा होने का गौरव प्राप्त करती है।

हिन्दी को गौरव किसी राजाश्रय या किसी की कृपा से प्राप्त नहीं होता, अपितु देशवासियों के द्वारा यह स्वत: प्रदत्त है। दक्षिण के कवि मुकुन्द राज (1128-1196) की भक्ति रचनाएँ हिन्दी में ही विरचित हैं। अब्दुल रहमान, कबीर, खुसरो भी इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। मुगलकालीन शासन में दक्खिनी हिन्दी के रूप में खड़ी बोली हिन्दी सबसे पहले दक्षिण में ही साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है। दिल्ली के आसपास की भाषा को मुगल शासकों ने अपनी सम्पर्क भाषा के रूप में अपनाया और उन्हीं के द्वारा यह दक्षिण में अपने कदम रखती है। प्रसिद्ध इतिहासकार एडवर्ड टेरी टॉमस रोवके का मत भी उक्त कथन का समर्थन करता है। उन्होंने लिखा है कि ''कलकत्ता से कुमाऊँ तक, लाहौर से नर्मदा घाटी के मध्यदेश तक हिन्दी ही सम्पर्क-भाषा का कार्य सम्पादित करती है।'' दक्खिनी हिन्दी और हिन्दुस्तानी के रूप में इसका प्रचलन उन्नीसवीं शताब्दी तक होता रहा। इब्राहिम आदिलशाह से लेकर रहीम बाहरी तक हिन्दी को सम्पर्क-भाषा की स्वीकृति मिलती रही। वराहनुचीन की ये पंक्तियाँ हिन्दी-प्रेम को दर्शाती हैं—

ये सब बोल हिन्दी बोल,
पण तूं अनुभव सेती खोल,
एख न राखे हिन्दी बोल,
माने तो चख देखे खोल ॥

खड़ी बोली हिन्दी की विकास-यात्रा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान अप्रतिम रहा है। भारतेन्दु ने खुसरो की लोकरंजकारिणी हिन्दी को लोकमंगलाकारिणी बनाने में सफलता प्राप्त की। भारतेन्दु यह जानते थे कि भाषा में सफलता जनता की सम्पदा होती है, जनता की विचारधारा और अन्य गुणों के आपसी टकराव और मानसिकता में सफलता पाती

है। जनता की बदलती मानसिकता में हिन्दी पूरी तरह समा चुकी थी। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' जैसी पत्रिकाओं के माध्यम से तथा कवितावर्द्धिनी सभा की स्थापना के माध्यम से साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया। अन्य कवियों ने भी इस दिशा में सार्थक प्रयास किया, जिससे हिन्दी को आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती रही। इस क्रम में फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता का प्रयास भी सराहनीय रहा। यद्यपि इस संस्था का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था, जिसके लिए व्यवहार में सरल, लोकप्रिय एवं जनता के लिए स्वीकृत हिन्दी को अपनाया गया और इस बहाने हिन्दी की विकास-यात्रा आगे बढ़ती गई। इसके अतिरिक्त दयानन्द सरस्वती के 'सत्यार्थ प्रकाश', तोताराम की 'भाषावर्द्धिनी सभा', 'नागरीप्रचारिणी सभा' आदि पुस्तकों एवं संस्थाओं के द्वारा हिन्दी की प्रतिष्ठा को जनता के बीच स्थापित किया गया। हिन्दी के हित में महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनकी 'सरस्वती' पत्रिका का योगदान भी अभूतपूर्व रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के गद्य की भाषा को परिभाषित कर गद्य-पद्य की भाषा के बीच की विभाजक-रेखा को मिटाकर उसका एकीकरण करने का सार्थक प्रयास किया। स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी का अपूर्व योगदान परिलक्षित होता है। हिन्दी ही राष्ट्र की स्वतंत्रता, अस्मिता, संस्कृति, एकता और अखण्डता की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए त्याग और उत्सर्ग करने हेतु प्रेरणा की भाषा बनती है। प्रसाद की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

जीवें तो सदा इसी के लिए / यही अभिमान रहे यह हर्ष।
न्योछावर कर दें हम सर्वस्व / हमारा प्यारा भारत वर्ष।

मैथिलीशरण गुप्त इस हिन्दी को भारत-भारती घोषित करते हैं। हरिऔंध, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर, नागार्जुन, प्रेमचन्द आदि साहित्यकार हिन्दी के ही वरदपुत्र हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हिन्दी एकता, अखण्डता, संस्कार और अस्मिता की सुरक्षा और संघर्ष की भाषा है। आज वह राजभाषा, राष्ट्रभाषा और प्रयोजनमूलक हिन्दी की गरिमा को स्वत: प्राप्त कर विश्वभारती बनने के लिए संघर्षरत है। इसका साहित्य किसी वर्ग या क्षेत्र का साहित्य न होकर समस्त राष्ट्र का साहित्य है; इसमें अभेद और एकता के स्वर गूँज रहे हैं। इन्हीं स्वरों के कारण हिन्दी समस्त राष्ट्र की वाणी है। यह समता, अखण्डता और मानवता की भाषा है, त्याग और उत्कर्ष की भाषा है। दिनकर की ये पंक्तियाँ सहज ही द्रष्टव्य हैं

श्रेय उसके प्राण में / बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित / मानवों की आयु।

भारत संस्कृतियों का देश है। वैश्वीकरण के इस हाईटेक-युग में भारतीय 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की जगह अमेरिकी 'विश्वग्राम' ने ले ली है। आज विविधता की जगह 'डाइवर्सिटी' खासे प्रचलन में है। भारत के विशाल भूगोल और इतिहास के अन्दर संस्कृतियों की जो बहुलता है, उसकी पहचान और सहअस्तित्व की भावना ही बहुसंस्कृतिवाद है और एकता में अनेकता का यह बहुत अच्छा उदाहरण है। हिन्दी साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई है। प्रगतिवादी साहित्य के बाद स्त्री-साहित्य और फिर दलित-साहित्य सांस्कृतिक बहुलतावाद के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

हिन्दी एक भाषा ही नहीं, विचार और संस्कृति भी है; किन्तु जिस अनुपात में हिन्दी भाषा की सीमा का विस्तार हुआ है, उस अनुपात में उसके विचार और संस्कृति का नहीं। हिन्दी आज विश्व-बाज़ार की भाषा के रूप में स्वीकृत हो रही है, किन्तु उसके साहित्य की सीमा सिमटती चली जा रही है। जिसे हम शुद्ध साहित्य कहते हैं, उसका दायरा केवल अकादमिक सीमा तक ही रह गया है। जाहिर है कि नई पीढ़ी और नए युग की जनता ऐसे साहित्य को पसन्द नहीं करती। इसका कारण यह है कि या तो उसके पास वैसी समझ नहीं है, या उसे समझाया नहीं जा सकता। हिन्दी भाषा तो वैश्विक बन गई, किन्तु इसका साहित्य कोने में सिमट गया। वैसे वैश्विक स्तर पर हिन्दी को एक प्रकार से मान्यता प्राप्त हो चुकी है। दूतावासों के माध्यम से ही नहीं, अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में भी हिन्दी के पठन-पाठन तथा अनुसंधान हो रहे हैं। हिन्दी भाषा-भाषी ही नहीं, अन्य समस्त भारतवासी विदेशों में निवास करते हुए यह अनुभव करते हैं कि वे अपनी संस्कृति और अस्मिता खोते चले जा रहे हैं। यह अनुभव और आत्मविश्लेषण हिन्दी को अपनाने तथा जीवित बनाए रखने का शुभ संकेत है।

हिन्दी के भावी इतिहास में यह बात पुरजोर ढंग से दर्ज की जाएगी कि हिन्दी का एक और स्वरूप है, जो इंटरनेट पर चिट्ठों यानी ब्लॉगिंग, अखबार की हिन्दी वेबसाइट और फेसबुक-ट्विटर पर हिन्दी में होने वाले संदेशों के आदान-प्रदान के रूप में दिखाई देता है। साइबर हिन्दी के विस्तार में इसकी अहम भूमिका के दर्शन भविष्य में होंगे। यदि इंटरनेट पर भारत जैसे देश की विशाल आबादी को अपनी बात कहने का मंच मिल जाए तो देश में एक बड़ी क्रान्ति आ सकती है। भारत की निरन्तर विकासमान अन्तरराष्ट्रीय हैसियत और एक व्यावसायिक पहचान हिन्दी को भविष्य में एक वृहत्तर भूमिका से सम्बद्ध करेगी। वैश्वीकरण के दौर में दुनिया का हर देश, चाहे जितना भी दूर या पास हो, मित्र हो या शत्रु, बाजार और कारोबार में जुड़ गया है। इसलिए किसी भी देश के नागरिक को, जो बाजार का हिस्सा है, उसकी ही भाषा में अपना उत्पाद बेचना होगा। भारत जैसा विशाल देश अपनी

अकूत आवश्यकताओं के लिए कई देशों पर निर्भर है और वैसे ही अन्य देश भी भारत पर। इन्हें जोड़ने का सबसे सशक्त माध्यम होगा –भाषा-माध्यम। भारत की सवा सौ करोड़ जनता की भाषा हिन्दी निश्चित रूप से इसमें फलेगी–बढ़ेगी।

विश्व–मानव के हृदय निर्द्वेष में
मूल हो सकता नहीं द्रोहाग्नि का;
चाहता लड़ना नहीं समुदाय है,
फैलती लपटें विषैली व्यक्तियों की साँस से।
(कुरुक्षेत्र, प्रथम सर्ग)

सहायक ग्रन्थ :

1. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास–डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल–डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास–डॉ. नगेन्द्र
5. हिन्दी साहित्य वैज्ञानिक इतिहास–डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त
6. आधुनिक साहित्य–आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
7. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी–नन्द दुलारे वाजपेयी
8. आलोचना-सागर–डॉ. रामप्रसाद मिश्र

बिपाशा शुक्ला, बी.ए. (ऑनर्स) अंग्रेजी, स्नातक बैच 2025

ये देश

तुम छले गए हो, तोड़े गए हो,
तिल–तिल करके मारे गए हो,
वो तलवार किसी की निज थी,
वो घाव तुम्हारे अपनों ने दिए,
तुम हमेशा से बिखरे हुए नहीं थे,
तुम छले गए हो, तोड़े गए हो।
इन घावों को थोड़ा वक्त दो,
अपने आँसुओं को ज़रा थामे रखो,
ये लड़ाई नहीं, संघर्ष है, उस पार दुश्मन नहीं,
तुम्हारे अपने हर वर्ष हैं।
इस देश में वीर रहते हैं,
हर क्षण बलिदान देते हैं,
लेकिन गद्दार भी यहाँ रहते हैं,
सुई बनकर काटते हैं और ज़हर दिल में रखते हैं।

पहाड़

देर रात,
जैसे सर्द अँधेरी रात में
चुपके से बर्फ बरसती है,
ठीक उसी तरह
किसी कोने में छुपकर
वो पहाड़ भी अक्सर रोया करता है।
जब सबने उसे छोड़ दिया,
तो उसने ऊँचा और कठोर होना
ही सही समझा।
उसकी कठोरता की वजह से
सबने उसे नापसंद किया,
पर क्या कभी किसी ने
उसे समझने की कोशिश की?
उसे नदियाँ भी छोड़ गईं,
आँधियाँ आईं,
तूफ़ान भी आए,
पर वो खड़ा रहा—
अडिग, अकेला।
वो भी रोया होगा
नदियों के साथ के लिए।
अब वो आह भी नहीं भरता,
अपने ग़म को समेटे
अपने कठोर स्वरूप में
स्थिर खड़ा रहता है।
पर क्या
पहाड़ का कठोर होना
गलत है?

राहुल द्विवेदी, बी.कॉम (ऑनर्स), स्नातक बैच 2025

घाट-घाट का पानी पीते चलूं

घाट- घाट का पानी पीते चलूं
पर घाट ना मेरा कोए
घाट-घाट पर मैं रहूँ
पर घाट ना साथ होये
मुसाफिर था मैं घाट का पर
ना मेरा घाट पर बसेरा होये
जो भी वक़्त घाट पर बीते
पता ही नहीं, है भी घाट पर या कहीं और ही खोये
वहाँ रहूं तो भी, वहाँ ना रहूं
पर वहां ना रहते हुए भी मन वहीं का होये
पर हूँ तो मैं मुसाफिर ही
इसलिये घाट ना मेरा कोए॥

सागर की एक बूँद हूँ, पर गहरा हूँ

सागर की एक बूँद हूँ, पर गहरा हूँ
सागर की आवाज़ सुनने के लिए मै बह रहा हूँ
खुद का अलग वजूद ढूँढता हूँ मानों
मैं खुद ही खुद पे एक पहरा हूँ
ठहर जाना चाहता हूँ कहीं हमेशा के लिए
पर कभी कहीं ना ठहरा हूँ
पर सागर की गहराई के अंदर
एक बूँद में भी गहरा हूँ॥

ENGLISH SECTION

हँसी

प्रोफेसर अनामिका, अंग्रेजी विभाग
अनुवाद : मणि राव

हँसी बेधड़क चीज है।
यह आ सकती है कभी भी, कहीं भी–
कठिन–से–कठिन वक्त में
रात–बिरात, बात–बेबात !

तानाशाहों के दरबारों में
''राजा नंगा, राजा नंगा'' कहती–कहती यह
पीट देती है ताली !

कापालिकों की बस्ती में भी
पुरानी चुनौतियों की
डोलती है एक हँसी
कंकाल की खोपड़ी में मदिरा–जैसी

और राख की ध्वस्त–सी नीलिमा में
चम–चम चमकती है
हँसी आग की !

गहरे विराग से थिराए हुए मन में भी
कभी फूट आती है हँसी–
शिव के जटाजूट में जैसे
धारा गंगा की!

Laughter

Original by **Prof. Anamika**
Translated by **Mani Rao**

Laughter has no rhyme or reason,
it shows up anytime, anywhere.

In the toughest situation,
in the middle of the night,
with or without provocation.

In the courts of tyrants, it shouts,
"The emperor has no clothes!"
and claps.

In the shanties of diehard ascetics,
like wine in a skull, it rolls
a sneer of forgotten challenges.

And in the blueish tinge of burnt ashes,
the fire of laughter shim-shim-shimmers.

Even in deeply detached wearied hearts,
laughter springs, like Ganga streaming
in the dreadlocks of Shiva.

रिश्ता

प्रोफेसर अनामिका, अंग्रेजी विभाग
अनुवाद : मणि राव

वह बिलकुल अनजान थी।
मेरा उससे रिश्ता बस इतना था कि
हम एक पंसारी के गाहक थे
नये मुहल्ले में।

वह मेरे पहले से बैठी थी–
टॉफ़ी के मार्तबान से टिककर
स्टूल के राज सिंहासन पर !

मुझसे भी ज़्यादा थकी दीखती थी वह,
फिर भी वह हँसी।
उस हँसी का न तर्क था,
न व्याकरण, न कोई सूत्र ही।
वह ब्रह्म की हँसी थी।

उसने फिर हाथ भी बढ़ाया,
और मेरी शॉल का सिरा उठाकर
उसके सूत किये सीधे
जो बस की किसी कील से लगकर
भृकुटि की तरह सिकुड़ गये थे।

पलभर को लगा,
उसके उन झुके कन्धों से
मेरे भन्नाए हुए सिर का
बेहद पुराना है बहनापा।

Sisterhood

Original by **Prof. Anamika**
Translated by **Mani Rao**

She was a total stranger.
My only connect with her—
we were customers of the same grocer
in a new neighborhood.

She was sitting when I showed up.
Leaning back on the toffee jars,
she sat on a stool, her throne.

She seemed more tired than me
and yet—that laugh!
That laugh had no logic,
no grammar, no theorem,
no point of view.
It was the laugh of Brahma,
creator.

Then she put out her hand, lifted the edge of my shawl
and set straight some threads that must have caught
on some nail
and gone wiry like an eyebrow.

For a moment it seemed—
between those bestowing shoulders
and my accepting head
surely, a hallowed
sisterhood.

Door

Original by **Prof. Anamika, Department of English**

Translated from Hindi by **Ms. Tarika, Assistant Professor, Department of English**

I was a door
The more I was knocked,
The more I opened
Those who came in witnessed –
The expansive, spinning wheel*–
When the millstone stops, the spinning wheel turns,
When the spinning wheel stops, the scissors-needles begin,
Fundamentally, something or the other
Is perennially spinning, in orbit!

...And in the end, the broom sweeps over everything–
Sweeps up the stars,
Sweeps the mountains, trees, stones –
All the broken and tattered scraps of her world
It collects in a basket
Somewhere in the depths of the heart!

*In this poem the original term for the expansive cycle/ revolution is *brihatchakra*, which is a term that encompasses both meanings: all-encompassing as well as huge. Oneof the implications is that the everyday cycles of a woman's life are caught up in the eternal repetitions of household chores, which are exemplified by the millstones, the spinning wheels and the scissors, needles, etc. Whatever desires are left over after the incessant cycles of the household are done, in the *srishti* or her world, are swept up by the broom and stored deep in the heart. The cycles turn, and the world of the home keeps turning, but the secrets of the woman who keeps the cogs turning are not revealed anywhere or to anyone in the world.

The Kitchen

Original by **Prof. Anamika, Department of English**

Translated from Hindi by **Ms. Tarika, Assistant Professor, Department of English**

She rolls out the rotis like it's the earth.
Volcanoes roll over mountains.
Earthquakes roll over houses.
Silences roll over words; low tides, the sea.
Every morning,
She puts a kindling in the sun
And gives it a new flame
She rolls out rotis like it's the earth.
The Earth – itself a ball of dough –
Has been placed
In the hands of the sun
Completely in its hands,
to take, roll it out, to cook,
just like the bees cook the honey,
under the shade of their wings.
The whole city is silent,
All the utensils in the kitchens have been washed clean.
The embers of each last stove have died out,
And she,
Standing in front of the heat of her own self,
In the sudden rush
Covering herself
Kneading herself again and again
Is happy that she can roll out the rotis as round as the earth.

Dr. Nilza Angmo, Assistant Professor, Department of English

Languages

My mother speaks five languages
My grandmother spoke seven
There is a saying that I have never heard,
"The more languages you speak, the further you are from home."
Does knowing two
(and a half)
mean I am close?

Ms. S. Bose Has Retired To Her Heavenly Abode

"Ms. S. Bose has retired to her heavenly abode.
Let us observe a moment of silence."
We stood up, joining our hands, our heads bowed,
bringing the buzz of our usual chatter to a freezing halt.
As vapours emerged from our warm bodies,
I thought about the now cold one
that lay frozen somewhere, ready to return to dust.
I stared at the table of empty coffee cups
books underlined, annotated, and highlighted,
and wondered what would now happen to Miss Bose's books.

What's In A Name

You ask me why
all this hue and cry
over names.
What's in a name?
Just type yours in Word,
Is it underlined? In squiggly red?

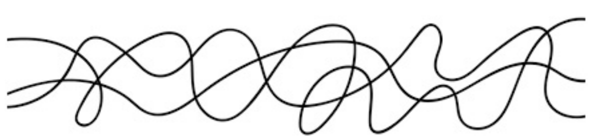

A Sincere Request

Ms. Anukriti Ashok, Assistant Professor, Department of English

Do you know how it feels?
When your body doesn't work like it's supposed to,
you feel cursed or punished, but you don't have a clue.
When your life takes a 360° turn all of a sudden,
and you metamorphose from a companion to a burden.
Do you know how it feels?
When your capabilities are outweighed by your disability, and
you're considered too fragile for any utility.
When you're unexpectedly showered with fake sympathy,
by those who are aversive towards your close proximity.
Do you know how it feels?
When you're not someone's true desire,
because your broken body doesn't evoke their fire.
When you're simply not enough for them,
because you're just a lump of coal, not a gem.
You might have no idea how it feels,
but I am sure that you can certainly try
to lend me your ear and not sympathetically sigh.
I sincerely request you to keep an open mind and see,
that beyond the handicapped body, it's the plain old "Me".

Hands That Never Left

Abhitabh Sheodarshi, BA (Political Science), 4th Year

Where did the strong hands go?
The hands that held me,
The hands that guided me,
The hands that patted me,
The hands that caressed me.
Where did the strong hands go?
The hands that tutored me,
The hands that clenched me,
The hands that fed me,
The hands that clapped for me.
Where did the strong hands go?
The hands that steadied me,
The hands that tarried with me,
The hands that signalled me,
The hands that wafted me.
Where did the strong hands go?
Those hands now laud me,
Those hands now implore me,
Those hands now spur me,
Those hands now bless me.
For those strong hands were, are, and will always be with me!

The Wind And The Rose

Ritika Rai, B.Com (Prog), 2nd Year

He searched for her everywhere.
He asked the rain,
He asked the sky, he asked the birds.
But she disappeared
Like the moon behind clouds.

He is the king of the earth, the wandering wind.
No door can refuse him, no place can hide from him.
Yet she watched quietly, hidden from his gaze.
She did not quarrel.
She only teased.
She is the queen of flowers, a rose of tender petals.
It was midnight.
She concealed herself in silence, forgetting their union was destined.
They could not remain apart
Even for a moment.

He is sensation.
She is sense.

Her fragrance dissolved into him like rain into the soil,
Like two birds dissolving
Into one love, between the deep midnight,
When no one was watching.
A gentle sensation touched her.
She knew the touch.
Her body shimmered.

Her eyes wished to see him once, but she could only feel him, like a body meeting its soul
After a long separation.
Slowly,
They became each other.
And the whole universe
Filled with the fragrance of the rose carried in the wind.
Love is divine.

From Dust to Glory: Stories of the Human Soul

Mainak Ghosh, B.A (Prog), 2nd Year

A man set out to roam one day,
He saw a sight that made him stay.
A rich man rode in comfort wide,
While the poor pushed hard, his tears inside.
With aching heart and troubled sigh,
He scratched his head and wondered why.

Burdened thoughts refused to cease,
So onward walked, in search of peace.
He met a guru, aged and wise,
With truth reflected in his eyes.

“O teacher, tell me, calm my mind,
Why is the world so cruel, unkind?”
“The poor must push, the rich must ride,
That’s how the world enjoys its pride.

They say without wealth life fades away—
Yet money moves, come what may.”
The beggar sits in dust and heat,
Three days have passed—no grain to eat.

His hunger turns to silent prayer,
His pain is real, his faith laid bare.
Before the temple gates he stands,
With empty bowl and open hands.

No gold he brings, no sweets to weigh,
Yet heaven hears what words can’t say.
The rich man fasts till morning light,
Then offers gold with ritual rite.

Sweetmeats, silver, wishes more,
He prays for wealth and fortune’s door.
The poet asks the silent sky,
“Whose faith is true, whose prayer flies high?”

Is God moved more by gifts on tray,
Or souls that starve yet still obey?
A father toiled through night and day,
So his son’s dreams could find their way.

With aching hands and quiet pain,
He bought his child a brighter lane.
The son grew rich, with rank and name,
Then mocked a worker bent with shame.

The father said, both soft and slow,
“My child, once I was working so.”
The words struck deep; the son felt small,
Truth stood taller than them all.

The poet watched a newborn leaf,
Soft and green—pure hope, belief.
It served till dry, then fell unseen,
As aging men lose strength, once keen.

O reader, pause—let this truth stay:
Honor all souls before they fade away.
So wealth may come, and glory shine,
Yet love and duty mark the line.

The pure of heart, though poor they be,
Are rich in ways that eyes can’t see.
Respect the hands that toil and strive,
For they give life and keep hope alive.

In every leaf, in every soul,
Lies a story that makes the world whole.

India: A Symphony of Oneness

Mainak Ghosh, B.A (Prog), 2nd Year

Divided we fall, united we rise,
Truth of a nation written in the skies.
Let walls of hatred fade and bend,
For unity alone, our land can mend.
Religious bias must lose its sway,
Compassion should guide us every day.
Lend the poor a hopeful hand,
And build together a stronger land.
The strength we seek, the strength we gain,
Is freedom from hunger, fear, and pain.
No tears of loss, no talent drained,
A future bright where minds remain.
We ask today with honest sight,
Is true integration still our light?
Joy and sorrow we equally share,
The cost of division is heavy to bear.
From clashes of caste to blasts of fear,
Doubts on unity often appear.
Yet this land, resilient and vast,
The will to improve can outpace the past.
Once great, we stood in timeless lore,
Epics and legends forevermore.
Through trials faced with courage strong,
We guard our nation, righting wrong.

Let rivers be shared, not used to divide,
Let borders not weaken the national pride.
Not land nor language should pull apart,
For unity lives in the Indian heart.
In a vibrant land of sky and stream,
Mountains rise where rivers dream.
A canvas bright with endless hue,
India thrives in all we do.
From Kashmir's crown to southern shore,
A million voices—yet one core.
Cultures and tongues in harmony speak,
Different in sound, united in peak.
Festivals glow in a joyful chain,
Diwali, Eid, Holi again.
Baisakhi cheers through time and tide,
Together we stand, side by side.
Hand in hand through storm and strain,
Each struggle shapes, not scars, our gain.
Bound by dreams both big and small,
Together we rise, together we fall.
Fields of green and oceans wide,
Deserts, valleys, faith and pride.
Different drums yet one sweet song,
In shared belonging, we grow strong.
So, cherish each soul, each role we play,
Peace our bond, love our way.
For when we unite, fearless and free,
One land, one soul, one destiny.

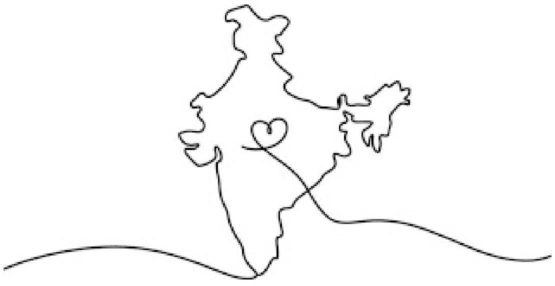

Paper Flower

Swikriti Sharma, B.A (Hons.) English, 4th Year

Dear Bougainvillea, you have something very magical—
Like a lady of Victorian times, your youth is classical.
You made me love the colour pink,
Writing on a hideous wall with its ink.
There's something very odd about you;
You remind me of a person I once knew.
His cheeks were just like that—
Hues of pink and paper-flat.
But he was dying, and I saw colour fade from his face,
Then one day, he vanished without a trace.
I remember admiring his pale face in moonlight,
And it resembled you in the colour white.
So now I have white bougainvillea at my place,
Funny how it takes up much of my garden space.
Just like how he used to do it when we lived together.
I told you, he was everywhere, clinging onto me,
Throughout the day and at night, not leaving me free.
He was like you, Bougainvillea—he was lively,
Fought till his last breath, like a strong tree.
So I hope, in the afterlife, he will become one of you,
And cling onto me like he knew
That it's me who built his home, piece by piece,
Only so my paper flower could rest in peace.
Until next rain
Well, I don't like rain these days,
But it feels unreal — I liked it always.
It feels strange,
Like things have changed.
I don't wanna dance or get all drenched,
I just blankly stare, my thoughts all clenched.
Feeling it from far away,
Silently hoping it will stay.
Yet I know it will stop, like it always does —
No more tapping on my roof; the silence will buzz.
And humidity will knock at my door,
Seeping quietly through the floor.
It will find me and won't go,

It'll just grow and grow and grow.
It's like those thoughts that wouldn't budge,
That leaves an imprint and doesn't smudge.
Still, a part of me likes the rain — its sound like a lullaby,
A perfect companion for my evening chai.
The breeze that carries the earthy smell
Makes me overwhelmed.
Finally, the nostalgia hits my brain,
Asking me to dance once again.
So I ran outside, feeling every drop touching my skin.
I looked up at the sky, like a child with a grin.
And just like that, I danced my heart out,
Running behind and chasing the black cloud —
Until next rain.

What Seeing Back Feels Like...
Never Miss An Opportunity!

Vishwas Bharti, B.A (Prog), 2nd Year

We don't lose things all at once.
We lose them in pieces. In pauses.
In the quiet comfort of saying, "Not today... maybe tomorrow."
Later, we'll call.

Later, we'll confess.
Later, we'll chase what once kept us awake at night.
But "later" is a slow thief.
It doesn't break the door.
It just waits for us to leave it open.
The apology grows old inside the chest.
The coffee turns cold without complaining.
The friend who once waited at the window stops looking at the road.
And the dream that once felt urgent learns how to live without us.
We think time is standing beside us.
It isn't.
It's walking ahead.
One day, we sit with our memories and realize nothing dramatic happened.
No storm. No warning. Just small delays. Small hesitations. Small silences.
And the heaviest truth arrives gently, we didn't run out of chances.
We ran out of courage when it mattered.
Life rarely screams when it's leaving. It fades. It cools. It moves.
So if your heart is asking you to try, to speak,
to begin, don't negotiate with tomorrow.
Because sometimes the biggest regrets
are not the risks we took, but the moments we politely postponed.

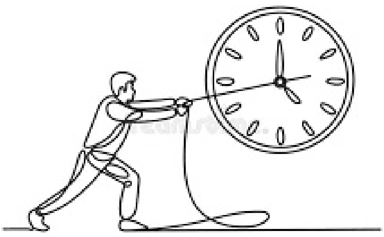

First Steps at Satyawati: A Freshman's Ode

Vansh Garg, B.Com(H), Semester, 1st Year

In the hallowed halls of Satyawati College,
Where Delhi University's banners proudly wave,
I, Vansh, a first-year seeker, first did tread,
Awakened to the beauty that this realm doth give.
Verdant lawns stretch wide beneath the autumn sun,
Ancient trees whisper secrets of scholars past,
Ivied walls and spires pierce the cerulean sky,
A symphony of stone and leaf, where dreams are cast.
The campus breathes with life, a living art,
Fountains dance in rhythmic, silver streams,
Libraries laden with wisdom's boundless heart,
Laboratories humming with innovative dreams.
From dawn's first light on dewy paths I roamed,
To twilight's hush in gardens softly glowing,
Each corner etched in memory's golden tome,
Satyawati's grace, in my young soul now flowing.
Yet beauty blooms not lone, but shared with kin,
New friends I found, like stars in night's embrace—
From distant lands and neighboring kin,
We forged our bonds in laughter's warmest space.
In classrooms close, debates that sparked the mind,
In canteen chats o'er chai and simple fare,
Hearts entwined, ambitions intertwined,
A brotherhood of youth, beyond compare.
To society's call, I lent my eager hand,
Engaged in clubs where service lights the way,
Volunteered for drives across this vibrant land,
Uplifting lives, from night unto the day.
In councils keen, I voiced the voiceless plea,

Planted saplings green for earth's tomorrow,
Debated rights beneath the banyan tree,
Steps forward taken, banishing all sorrow.
The fest arrived, a whirlwind of delight,
Satyawati's heartbeat in carnival guise—
Lights aglow, stages thrummed through day and night,
Dances wild, melodies that mesmerize.
I reveled in the throng, joy uncontained,
Savoring games, feasts, and cultural blaze,
Yet glimpsed the undercurrents, politics unchained,
Factions vying in the vibrant, shadowed maze.
Elections buzzed with fervor, banners high,
Voices clashed in democratic fire,
A lesson learned 'neath festal sky:
Power's dance, both noble and dire.
Through trials met and lessons deeply earned,
These experiences forged my path anew—
Internship gained, a gateway brightly burned,
In first-year stride, ambitions breaking through.
From mentors' wisdom and peers' steadfast aid,
I stepped ahead, professional wings unfurled,
In corporate halls, my novice skills displayed,
A forward leap into the working world.
Thus, at Satyawati, my journey's just begun,
A tapestry woven of beauty, bond, and quest,
Friends eternal, society served as one,
Fests remembered, politics' subtle test.
Internship's triumph crowns this freshman year,
Forward I stride, with gratitude profound,
Delhi University's son, forever dear,
In Satyawati's arms, true purpose found.

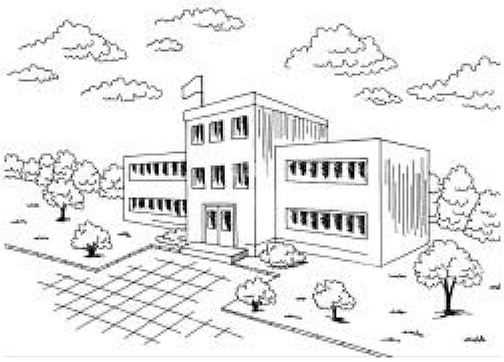

Is AI Making Gen Z Emotionally Lazy — Or More Self-Aware?

Dr. Sangya Ranjan, Professor, Department of Economics

Just think!! We outsource our playlists, our schedules, even our heartbreaks to algorithms. But what happens to the human heart when it learns to lean on code?

Picture this: It is 1 a.m. You have just had a blowout fight with your roommate, your chest feels tight, and you do not know what to do with the storm inside you. A decade ago, you might have called a friend, scribbled furiously in a journal, or simply sat with the discomfort until morning. Tonight, you open an app and type: 'I am feeling really overwhelmed. Can you help me process this?' Within seconds, you have a thoughtful, empathetic, perfectly structured response. The storm quiets — a little. But did you just grow emotionally, or did you just outsource it?

This is the defining emotional question of our generation. Gen Z, the first cohort to grow up entirely inside the digital ecosystem, now lives alongside artificial intelligence in an intimacy no previous generation could have imagined. AI writes our essays, plans our meals, suggests what to watch, and increasingly, helps us navigate the labyrinth of our own feelings. The question is not whether AI is here. It is whether its presence is making us deeper human beings or quietly eroding the muscles we need to become them?

The Comfort of the Algorithm

AI-based emotional support tools are genuinely useful. Apps that use AI to guide journaling, manage anxiety, or practice difficult conversations have helped millions of people, including college students who lack access to timely mental health care. In a campus environment where waitlists for counsellors can stretch for weeks, having an intelligent, non-judgmental presence available at 1 a.m. is not a small thing. It can be a lifeline.

Research suggests that structured self-reflection, even when prompted by a chatbot, can improve emotional clarity. When an AI asks, 'What specific emotion are you feeling right now? What triggered it?' it is essentially coaching you through a mindfulness exercise. For someone who never learned to introspect, that scaffolding can be the first step toward genuine self-awareness. In that sense, AI can be a training wheel for emotional intelligence, not a replacement for it.

Emotional intelligence is not a fixed trait; it is a practice. The question is not what tool you use, but whether the tool makes you more or less human in the process.

Many Gen Z students report using AI to rehearse difficult conversations before having them in real life, such as telling a friend about a falling out, setting boundaries, or expressing romantic feelings for the first time. Used this way, AI becomes a rehearsal stage. It reduces fear. It builds vocabulary. It creates space to hear yourself think before the high-stakes moment arrives. This is emotional intelligence in action; it is just being assisted.

When Assistance Becomes Avoidance

But here is where it gets complicated. Emotional intelligence, real, durable, adult EQ, is not built in comfort. It is built in friction. It is built when you have to sit with uncertainty without immediately soothing it. It is built when you have a hard conversation that does not go perfectly,and you survive anyway. It is built when you feel something unpleasantlike jealousy, resentment, shame, and you do not immediately reframe it into something acceptable, but instead look at it, own it, and learn from it.

When AI is always available to soothe, translate, and reframe our emotions for us — is it possible we are quietly losing the capacity to do that for ourselves? This is the question researchers are beginning to ask, and the preliminary answers are worth paying attention to. If every emotional discomfort has an instant digital remedy, when do we develop tolerance for ambiguity? When do we learn that some feelings are not problems

to be solved, but truths to be lived?

Signs You Might Be Over-Relying on AI

- You feel anxious or stuck when you cannot access your AI tool during emotional moments
- You struggle to name emotions without being prompted by a structured app
- You avoid direct conversations with people and prefer to process emotions exclusively through AI
- You compare AI's calm responses unfavourably to real humans and prefer the AI
- Journaling or self-reflection feels impossible without a digital interface
- You can articulate emotional theory fluently but freeze in real-world emotional situations

There is also a subtler danger. Gen Z is extraordinarily articulate about mental health. The vocabulary, boundaries, triggers, attachment styles, gaslighting, and emotional regulation flows easily, often thanks to social media and AI tools that have made psychological concepts mainstream. But vocabulary is not the same as wisdom. Knowing that you have an anxious attachment style is not the same as doing the difficult internal work to change how you respond in relationships. AI can give you the map; it cannot walk the territory for you.

The Empathy Gap and Why It Matters

There is one place AI simply cannot take you, no matter how sophisticated it becomes: into genuine human connection. Empathy, the ability to feel what another person feels, to truly be present with their pain or their joy, is built through imperfect, and sometimes awkward, human interaction. It is built when your friend is crying, and you do not know what to say, and you stay anyway. It is built when you disagree with someone but do not choose contempt.

Studies on digital communication have consistently shown that heavy mediation of emotional interaction reduces our capacity to read nonverbal cues, tolerate silence, and respond in real time to another person's emotional state. These are not soft skills. They are the foundational architecture of every meaningful relationship you will ever have, every friendship, romantic partnership, professional collaboration, and act of leadership. If we allow AI to become the primary site of our emotional processing, we risk starving these capacities.

Using AI With Emotional Intelligence

The goal is not abstinence; it is intentionality. The most emotionally intelligent thing you can do with AI is to use it in ways that grow your capacity, not substitute for it.

Here is what that looks like in practice.

- Let an AI help you identify what you are feeling and why, and then take that insight into a real conversation with a person who matters to you.
- Set aside time each week to sit with a difficult feeling without immediately reaching for a digital remedy. Write in a paper journal. Go for a walk without headphones. Let the discomfort be present.
- Instead of having AI tell you how you feel, challenge yourself to name it first.
- Rehearse with AI if you need to,but then go have the actual conversation even if it is messy, imperfect, but human. The rehearsal is preparation; the conversation is the education. Do not confuse the two.
- Pay attention to when you reach for AI as a coping mechanism versus a learning tool. There is a difference between using AI to process and using it to escape.

Gen Z is the first generation to have the opportunity to be both technologically fluent and deeply emotionally intelligent and to figure out how those two things can reinforce each other rather than compete. That is not a burden. It is a privilege, and a responsibility.The students who will thrive, in careers, in relationships, in their own inner lives, will not be the ones who avoided AI or the ones who surrendered to it. They will be the ones who used it wisely.

Emotional intelligence has always been the most human of intelligences. It cannot be downloaded or generated. It is earned, in every uncomfortable conversation you do not avoid, every feeling you do not immediately medicate away, every moment of genuine presence you offer to another person. AI can be a companion on that journey. But the journey itself? That is still entirely yours.

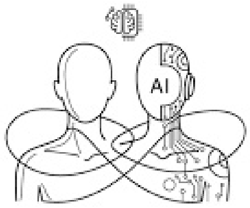

An Analysis of Improved Gender Ratio in India

Dr Nita Singh, Associate Professor, Department of Economics

The National Family Health Survey (NFHS) 2019-21 has, for the first time, reported more females (1020) per 1000 males for the Indian population. While some researchers have hailed it as a turning point towards a more balanced sex ratio, others are skeptical. A balanced gender ratio is important for the healthy growth of the population, lower crime rates, marital stability, mental health, domestic violence, and overall well-being of society. Several Asian countries, including India, have traditionally favored sons over daughters because of their economic, social, and religious value. Sons are considered important for carrying on the family name and for exercising property rights, especially land rights. Factors, like dowry, promote sons as an asset and daughters as a burden. Females also have relatively low labor-force participation rates. Moreover, in a patriarchal society, there is dependence on sons in old age due to a lack of social security.

The tendency towards masculinization of the population got an unintended impetus from the technology of amniocentesis. It was introduced in India in 1978 with the purpose of detecting "fetal genetic abnormalities," but was increasingly used for detecting the gender of the child, and often abortion of female fetuses was done. In the late 1980s, Amartya Sen, through a series of articles, drew attention to bias against girls in a number of societies across the world, claiming that around 100 million women were missing in the world. In order to stop the misuse of technology, the Government of India formulated the Pre-natal Diagnostic Techniques (PNDT) Act 1994 and brought it into force in 1996, although the effectiveness of this law continues to be a matter of debate. The government, both at the Center and states, periodically comes out with policies encouraging female births and enhancing their general well-being, like Beti Bachao, Beti Padhao, Ladli, Jeevan Sukanya, to name a few.

The objective of this article is to use the latest data to analyze the trend in sex ratios and look at probable causes that could contribute to a favorable sex ratio and also factors that are still a matter of concern. We look at the role of female education to study its contribution towards population sex composition.

Reviewing the facts

For a better understanding let us look at trend in following two ratios from 1951 onwards in figure 1. The Overall Sex Ratio (OSR) – it is female to male ratio per thousand in total population and Child Sex Ratio (CSR) – it is female to male ratio per thousand in living child population of 0 to 72 months. The census data is most accurate but it is available only till 2011. For the period after 2011 information is available from National Family Health Survey (NFHS) IV (2015-16) and V (2019-21).

Figure 1: Trend in Overall Sex Ratio (OSR) and Child Sex Ratio (CSR)

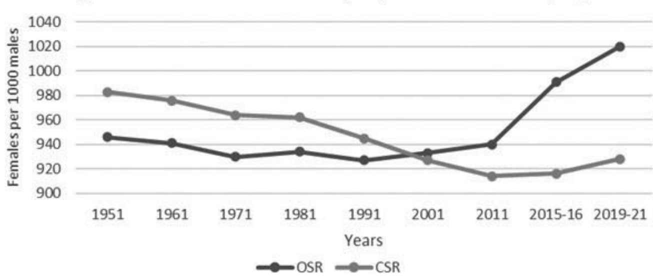

Source : Census of India (1951-2011); NFHS (2015-16 and 2019-21)

Data from the census shows that the child sex ratio (CSR) has declined continuously from 983 girls per thousand boys in 1951 to 914 in 2011. The ratio has declined faster after 1981. The NFHS data reports that the decline in CSR has halted, with CSR rising to 916 (2015-16) and later to 928 (2019-21). Correspondingly, the OSR improved from 940 in 2011 to 1020 in 2021, indicating that, for the first time, there were more women than men in the population. However,

the NFHS figures have to be treated with caution.

Factors favoring improved sex ratios
Slowdown of state level fall in CSR

Since the future population's sex ratio will be determined by the sex ratio among today's children, we examine CSR in greater detail. As already noted, all-India CSR increased from 916 to 927 between 2015-16 and 2019-21, as shown by the vertical dotted lines in Figure 2. However, there is significant interstate variation, and the CSR (2015-16) ranged from a low of 826 in Haryana to a high of 1025 in Kerala. The state-wise changes in CSR for the latest two years for which data are available are traced below.

Figure 2: State-wise changes in child sex ratios (2015-2021)

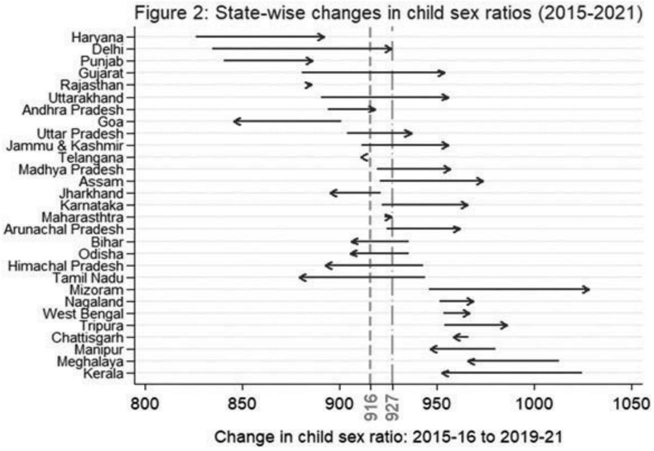

Most of the northern and western states, like UP, Punjab, Haryana, Rajasthan, Gujarat, and Uttarakhand, that started with the most adverse sex ratios reported an improvement, while states in the south (Kerala, Tamil Nadu) and North East (Meghalaya, Manipur) that had an initial favorable sex ratio have reported worsening. One of the major factors contributing to overall improvement in CSR is that the most populous state, UP, with a 16.5% share of the total population, and MP, with a 6% share, have shown a rise in CSR from 919 and 921 in 1992-93 to 937 and 957 in 2019-21. Maharashtra, with 9% population share, had a more stable CSR. Bihar, with an 8.6% share of the population, remains a state of concern because it had a low CSR of 941 to begin with and ended up with an even lower figure of 906. What is also worrying is that tribal dominated state like Chhattisgarh and Jharkhand have seen a worsening of CSR, reflecting the spread of the mainstream son preference trend to remote areas.

Role of female education

Female education in India has been rising over the years. The percentage of females with no education decreased from 56.9 in 1992-93 to 23.1 in 2019-21, while the percentage with higher education increased from 4.3 to 14.1 over the same period. It is believed that higher rates of female education support a move towards favorable CSR because educated women will be more modern in their outlook and shed the traditional mindset of son preference. Let us see what the data says -

Table 3: Selected characteristics across Education Categories (2019-21)

	SR of ever born children	Av. Child per female	Percent surviving	Daughter only families
No education	906	3.3	92.2	8.6
Primary	911	2.8	93.8	10.9
Secondary	906	2.2	95.9	11.9
Higher	882	1.7	97.7	13.3

Source : NFHS-V (2019-21)

Data shows several contradictory observations. Women with higher education had the lowest sex ratio of ever born children (882) as well as lowest average child per woman (1.7). In fact, falling fertility could explain the decline in CSR. Since highly educated females would want to have only one or two children then if sex of child is not what they desire, they would rather not have it.

What is also worth noting is that, despite a skewed sex ratio in favor of sons, highly educated women have the highest percentage of daughter-only families. This shows that the "one size fits all" phrase cannot be applied to the heterogeneous group of highly educated women. Some studies find that the impact of female education on the sex ratio among children follows a U-shape: initially, female education makes the CSR more uneven, but later, when a greater proportion has accessed higher levels of education, it acts in the opposite direction. With female education set to rise in the future, it is only hoped that the bias against the girl child will reduce.

Concerns due to skewed Sex Ratio at Last Birth (SRLB)

Lastly, we study families with three children and determine the sex ratio of the last child under three

scenarios, depending on the sex of the earlier children: both male, both female, or one male and one female.

Table 5: Sex Ratio at Last Birth per 1000 - case of 3 children

	1992-93	1998 99	2005-06	2015-16	2019-21
SRLB when the first two births were male	985	972	970	1014	1044
SRLB when the first two births were female	736	677	607	517	481
SRLB when there was 1 male & 1 female	792	742	714	681	679

Source: NFHS various rounds

For cases where first two children were male, the SRLB increased from 985 girls per thousand boys in 1992-93 to 1044 in 2019-21 showing the desire to have at least one girl has increased. However, when the first two children were females the SRLB has deteriorated from the low of 736 to 481 girls per thousand boys over the entire period. The figures confirm the persistent and prevalent use of technology in propagating the deeply embedded son preference within the society and things seem to be worsening overtime.

Conclusion

While India celebrates the news that women have outnumbered men for the first time in 2020-21, this article advices caution because there are still areas of concern. On one hand CSR has improved in states where it was most adverse, namely, Punjab and Haryana. On the other hand, tribal-dominated states of Jharkhand and states in the south (Kerala, Tamil Nadu) and the north-east (Meghalaya, Manipur), which had an initial favorable sex ratio, have reported worsening. The impact of female education on the sex ratio among children is mixed. Although highly educated females have most adverse sex ratio of children ever born, the percentage of daughter-only families is the highest among them. The preference for sons remains strong, and the SRLB for families with three children, when the first two births are female, fell further, from a low of 732 in 1992-93 to 481 girls per thousand boys in 2019-21. Thus, it might be a bit early to celebrate the advent of a modern outlook and movement towards a balanced sex ratio.

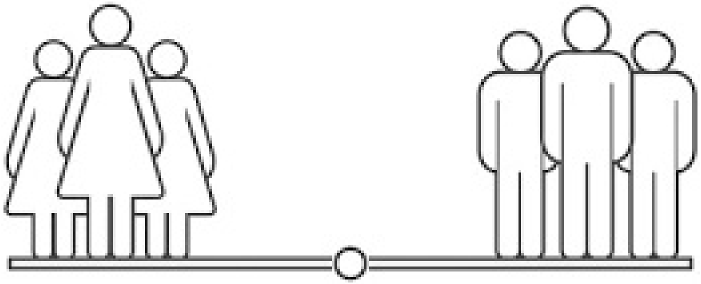

The Fading Art of Humanities

Abhitabh Sheodarshi, B.A (Political Science), 4th Year

As a school student, I remember my English literature classes on Shakespeare's "The Merchant of Venice", where Shylock's haunting speech "Hath not a Jew hands..." and Portia's reflection on "the quality of mercy" stayed with me far beyond the classroom. Similar depths unfolded in Hindi texts like "Sandeh" by Jaishankar Prasad and "Bade Ghar ki Beti" by Munshi Premchand. Alongside these, the lessons of history on the Renaissance, the freedom struggle, and even geography chapters, linking climate and topography to the fabric of sarees and the spices used in varied regions of India, collectively opened up a richer, interconnected world. These experiences shaped how I began to see life not in isolation, but through the lens of human vulnerability, context, and complexity. It was in those formative school years that my inclination towards the humanities took root. And yet today, I cannot help but notice a quiet irony in its story.

Today, humanities exists in a state of paradox: quantitatively dominant, qualitatively uneven; institutionally expansive, yet existentially insecure. It is at once the most accessible stream and the least respected, the most populated and the least invested in. This contradiction is not accidental. It is the outcome of a deeper transformation where education, once a pursuit of knowledge, increasingly bends to the logic of numbers, targets, and employability metrics. In such an environment, the humanities risks being reduced to a means of mass certification, rather than a discipline of critical thinking.

In India, the expansion of humanities education is inseparable from the political economy of higher education. Governments, under pressure to increase the Gross Enrollment Ratio (GER) in colleges and higher educational institutions, have found in the humanities a convenient instrument. It is, after all, less resource intensive, easier to scale, and administratively manageable.That results in swollen classrooms, stagnant libraries, multiplication of degrees and thinning out of ideas. This is not merely an educational issue; it is a structural problem, where quantity substitutes for quality, and access eclipses excellence. Due to low investment in research and development which hovers around (0.6–0.7% of GDP in India) far below the global average, universities that once functioned as sites of knowledge production increasingly resemble sites of degree distribution. The paradox sharpens: the need for humanities grows precisely when its institutional support declines. From the few traditional islands of excellence to the newer liberal arts spaces, the burden of maintaining intellectual standards falls on a narrow and increasingly strained elite. This not only diminishes the spaces of rational and critical thinking but acts as agents spreading fanatic and credulous narrative often accompanied by populism and subjugation of dissent thereby undermining the European ideas that have shaped the world through the ages like reformation, renaissance, romanticism, revolution, relativism and republicanism.

Perhaps the most insidious challenge facing the humanities is not institutional, but cultural. It is the deep-seated societal perception of inferiority. In popular imagination, humanities are often the 'fallback option,' the refuge of the academically weak, a path with an uncertain career and economic returns. An insightful observation in contemporary educational discourse notes that student choices today reflect 'a rational calibration of economic risk rather than a decline in intellectual curiosity.' In other words, the retreat from humanities is less about disinterest and more about insecurity. And yet the world we inhabit today, its democracies, its legal systems, its international institutions, is the product of centuries of reflection within

the humanities. The ideals that emerged from the French Revolution, the global reordering after World War II, and the establishment of multilateral institutions like the United Nations are all rooted in philosophical, historical, and ethical inquiry. In India, the Constitution stands as a monumental testament to the power of humanities, an intricate synthesis of political theory, social reform, and moral vision which was a result of reimagining the society through the lens of social, ethical and philosophical reasoning.

An unsettled world with shaking intellectual foundations reveals how fragile the modern world is. As we witness exclusionary nationalism, weakening of multilateral institutions, erosion of public reason and polarization of history and identity, we understand that the crisis is not political or economic; it is epistemic, a crisis of how we know, interpret, and understand. In such a moment, the call to return to humanities is often misunderstood as nostalgia. It is, in fact, a call for renewal. Martha Nussbaum argues in her work *Not for Profit* that democracies depend on citizens who can think critically, argue reasonably, and empathize deeply, capacities cultivated by the humanities.

The story of humanities today is not one of simple decline, but of unfinished transformation. It stands diminished in status, yet indispensable in function; neglected in policy, yet central to human survival. For within its vast, often underappreciated terrain lies not only the memory of our past, but the possibility of a more thoughtful, humane, and balanced future. In the end, the humanities does not promise quick answers. It offers something far more enduring: the capacity to ask the right questions!

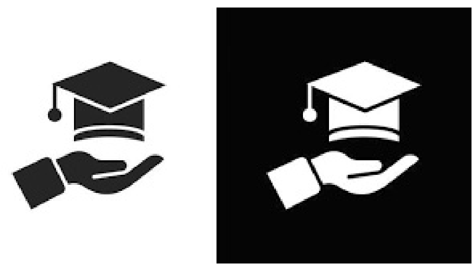

A Journey of Growth, Grit, and Self-Discovery

Nishant Kumar, B.A(Prog), 1st Year

The journey of education is rarely a straight path. Mine certainly was not. From the innocence of Lower Kindergarten to the responsibilities of graduation, my academic life has been a blend of achievements, setbacks, reflection, and transformation.

My introduction to formal education began with curiosity mixed with hesitation. Like every child, I stepped into the classroom unaware of how deeply those early years would shape my character and mindset. As I progressed through the primary grades, I slowly began discovering both my strengths and my limitations.

A defining moment came in Class 2 when, under the guidance of my class teacher, I achieved commendable results. Her encouragement ignited a spark of confidence within me and awakened a genuine interest in learning. That phase taught me an invaluable lesson — sometimes, all a student needs is someone who believes in them.

However, the journey ahead was not consistently smooth. Classes 3 and 4 brought academic struggles and a noticeable lack of focus. Despite sincere efforts, I often found myself underperforming. These years tested my patience and forced me to confront my weaknesses rather than ignore them.

Another turning point arrived when school reshuffling policies separated me from close friends. Adjusting to a new classroom environment left me feeling isolated and

unsettled. The emotional discomfort began affecting my academic stability. Class 6, in particular, became one of the most difficult phases. An undisciplined environment combined with my own inconsistency eventually led to failure — an experience that felt devastating at the time. Yet, that very failure became the most transformative moment of my school life. It compelled me to reflect deeply and accept responsibility for my own growth. Instead of blaming circumstances, I chose to rebuild myself. From that point onward, gradual but steady improvement became visible — not just in my academic performance, but in my attitude toward life.

Class 8 brought an unprecedented global disruption — the lockdown. While uncertainty surrounded everyone, I chose to adapt rather than retreat. Completing the entire year's syllabus within fifteen days during that period strengthened my discipline, time management, and determination. It taught me that resilience is not about avoiding challenges; it is about rising despite them.

Classes 9 and 10 stand out as some of the most enriching years of my school journey. Surrounded by supportive and inspiring peers, I thrived both academically and socially. These years gifted me meaningful friendships, lasting memories, and the confidence that comes from being part of a positive environment.

Classes 11 and 12 marked a profound shift in my personality. These were the years that built my confidence — especially the confidence to stand and speak in front of others. I realized something liberating: people do not judge us as much as we fear they do. Often, we are our own harshest critics. Once I understood this, I began stepping forward instead of holding back.

One of my teachers played a significant role in this transformation. He believed in me, worked patiently with me, and pushed me beyond my comfort zone — asking me to write on the blackboard, to read aloud, and to express myself before the class. What once felt intimidating slowly became empowering. Through his guidance, I discovered a more confident version of myself.

Now, as I continue my graduation, I carry with me one of the most profound lessons life has taught me: transformation begins within. No external force can shape our future unless we first take ownership of our present. Self-belief, consistency, and discipline are stronger than luck or circumstance.

Looking back, I realize that every setback carried a hidden lesson, and every struggle quietly built resilience. My journey has not been flawless — but it has been meaningful. It has shaped me into someone who understands that growth is not defined by uninterrupted success, but by the courage to rise after every fall.

As I move forward into the next chapter of my life, I do so with gratitude, for the lessons, for the failures, for the mentors, and for every experience that shaped me into who I am today.

The Silent Killer Of Our Ambition–Procrastination

P. Venkata Lakshmi, B.Com (H), 3rd Year

We procrastinate because we're human, and humans are hardwired to avoid pain. When a task feels too big, too boring, or—most commonly—too tied to our self-worth, our brains treat it like a physical threat. We tell ourselves, "I'll do it when I'm in the right headspace," but the "right headspace" is a myth. We are waiting for a surge of motivation that usually only shows up when the panic of a deadline finally outweighs the fear of the task.

The Perfectionism Trap: If you don't start, you can't fail. As long as the project is in your head, it's perfect. Once it's on paper, it's flawed.

Decision Fatigue: Sometimes we don't start because we don't know the first step, and our brains would rather shut down than solve the puzzle.

The "Future Self" Fallacy: We treat our "Future Self" like a superhero who will have more energy, more time, and more willpower than we do right now.

Spoiler: That person is just you, but more tired. You don't need a fancy planner or a new productivity app. You just need to lower the stakes.

Stop Aiming for Great: Aim for "done." A "C-minus" version of a project that exists is infinitely better than a "Gold Medal" version that only exists in your imagination.

The "One Small Slice" Method: Don't try to "clean the kitchen." Just wash three forks. Usually, once your hands are in the soapy water, the rest feels doable.

Be Kind to the Version of You That's Struggling: Beating yourself up is exhausting, and you need that energy to actually work. Forgive yourself for the last three hours you wasted, put the phone in another room, and just breathe.

Ultimately there's a saying, Get the action habit, you don't need to wait until conditions are perfect.

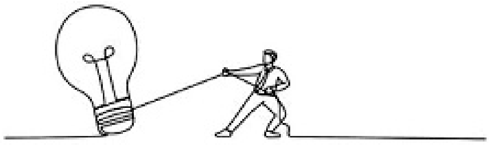

FAREWELL

The college fraternity lost two faculty members in the last year.

Dr. Dharmendar Kumar, Assistant Professor, Department of English, succumbed to a short but severe illness. He passed away on 3rd April 2025. We mourn his loss to the college teaching fraternity.

Dr. B. K. Grover, Associate Professor, who had retired from the department of Commerce, left for his heavenly abode on 30th October 2025. We mourn his loss to the college teaching fraternity.

ALUMNI CORNER

Bipasha Shukla, **B.A(H) English, Batch of 2025**

What Would We Be, If Not Alive?

What would we be, if not alive?
A shapeless, genderless entity,
hovering in and around this world,
sitting in different places,
and never getting noticed.
Our worth would not be counted in pennies.
We wouldn't be left behind

because we weren't enough for them,
It would be a world that owns us,
and a world that we own,
admire,
and reside in.
Wandering through the river,
we would hug the ones
who left us too early.
The wind would be our home.
The trees would be the fathers
whose shade we seek.
And the Ganga would be our
mother,
inside whose womb
we would reside.

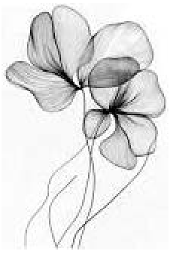

As I walk it

When I walk that path,
I won't call you to love me, caress me, or see me.
You will no longer be the wish I pray for.
I will walk it alone, fiercely.
I will no longer be the thing you desire;
I will not be the one you can hurt.
I will remain unharmed.
I will walk on it in white, uncoloured by any desire.
I will walk on it in black, where my wounds cannot be
seen.

I will be in the winds that blow strangely;
I will be the birds you see startlingly.
I will be the sun.
I will be the moon you see hopelessly.
I will be in the Ganga you sit by;
I will be in the mountains you stand by.

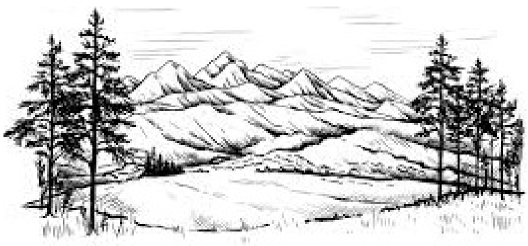

CORRIGENDUM

The poem 'A Sincere Request' was published in the last edition (2024-25) of the college magazine *Satya* but wrongly attributed to Dr. Mandavi Chaudhary, Department of English. The poem has been written by **Ms. Anukriti Ashok**, Department of English.

कुलगीत

दिल्ली विश्वविद्यालय

जयति जय जय–जयति जय जय
ज्ञान का आलोक अनुपम
श्रेष्ठ सुन्दर दिव्य दिल्ली
विश्वविद्यालय विहंगम

सकल वसुधा निज कुटुंब की
भावना संस्कृति सनातन
आधुनिक शिक्षा पुरातन
ज्ञान धाराओं का संगम
देश की स्वाधीनता हित
भूमिका शत कोटि वंदन
निष्ठा धृति सत्यम के मंगल
दिव्य भावों का समागम
जयति जय जय–जयति जय जय
ज्ञान का आलोक अनुपम
भव्य महाविद्यालयों के
परिसरों से चिर सुशोभित
श्रेष्ठ गुरुजन कर रहे नित
छात्र और छात्राएँ दीक्षित
सचरित्राचार पावन
साधना संकल्प संयम
नवल वैश्विक चेतना
नव क्रान्ति संस्कारों का उद्‌गम
जयति जय जय–जयति जय जय
ज्ञान का आलोक अनुपम
श्रेष्ठ सुन्दर दिव्य दिल्ली
विश्वविद्यालय विहंगम

रचनाकार
गजेन्द्र सोलंकी
अंतरराष्ट्रीय कवि, गीतकार

STUDENTS ARTWORK

Bhoomika Rathi, B.A. (Hons) English, 1st Year

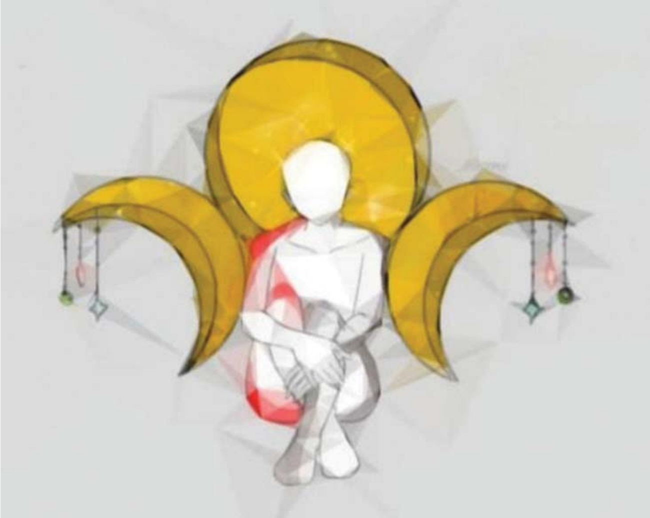

Bhoomi Gupta, B.A (P), 2nd Year

Bhoomi Gupta, B.A (P), 2nd Year

Pallavi Raj, B.Com. (Hons), 2nd Year

ALUMNI ARTWORK

Shubhra Batra, B.A(Hons) English, Batch of 2018

राष्ट्रगीत

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यशामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीं
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीं
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीं
सुखदां वरदां मातरम्॥1॥ वन्दे मातरम्।

कोटि-कोटि-कण्ठ-कल-कल-निनाद-कराले,
कोटि-कोटि-भुजैर्धृत-खरकरवाले,
अबला केन मा एत बले।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं
रिपुदलवारिणीं मातरम्॥2॥ वन्दे मातरम्।

तुमि विद्या, तुमि धर्म
तुमि हृदि, तुमि मर्म
त्वं हि प्राणा: शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गडि मन्दिरे-मन्दिरे मातरम्॥3॥ वन्दे मातरम्।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वाम्
नमामि कमलां अमलां अतुलां सुजलां सुफलां मातरम्॥4॥
वन्दे मातरम्।

श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां
धरणीं भरणीं मातरम्॥5॥ वन्दे मातरम्।

राष्ट्रगान

जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा
उच्छल जलधि तरंग
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष मागे,
गाहे तव जयगाथा।
जन गण मंगल दायक जय हे
भारत भाग्य विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय, जय हे॥

Left to Right (standing): Mr Rahul Dubey, Mr. Lalit Ram, Mr. Kamal Khatri, Dr Momina Ahmad, Ms Manisha, Mr Pramod, Mr Santosh Kumar, Mr Rahul Thakur, Mr Narendar Bisht, Mr Deepak Joshi, Mr Sunil Kumar, Mr. Narendar Dedha, Mr. Gaurav, Ms. Shikha Chaudhary, Mr Om Kumar, Mr Chandan Ram, Ms Rajbala Rani, Mr Dheeraj
Left to Right (sitting): Mr Sumit, Mr Raghavendra, Mr Shubham, Mr Sanjeev Kumar, Mr Amit, Mr Harish Patwal, Mr Dhushyant, Mr Sagar, Mr Gulab S

Mr Kumar Chandan, Mr Narendra Thakur, Mr Narendra Bisht, Prof. Hari Mohan Sharma (Principal), Prof. Sushma Yadava, Prof. Pamela Singla

Left to Right : Prof. Hari Mohan Sharma, Prof. Subhash Anand, Prof. Balaram Pani, Shri Ashish Sood Ji, Shri Bharat Bhushan, Prof. Ramnarayan Patel, Prof. Rajiv Kumar Verma

Left to Right : Dr.Rajiv Kumar Verma, Prof. Subhash Anand, Mr.Vansh Garg, Miss Payal Bishnoi, Mrs .Tarika, Mr. Saksham Shrivastava, Mr. Abhitabh Sheodarshi, Miss Sonal Tiwari, Prof.Ramnarayan Patel, Prof. Hari Mohan Sharma

DESIGNED BY : ADHUNIK JANSANCHAR PVT. LTD. / 9868621277

सत्यवती महाविद्यालय (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय
अशोक विहार, दिल्ली-110052